वार्षिक रु. १००, मूल्य रु. १२

विवेक ज्योति

वर्ष ५४ अंक ९ सितम्बर २०१६

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर (छ.ग.)
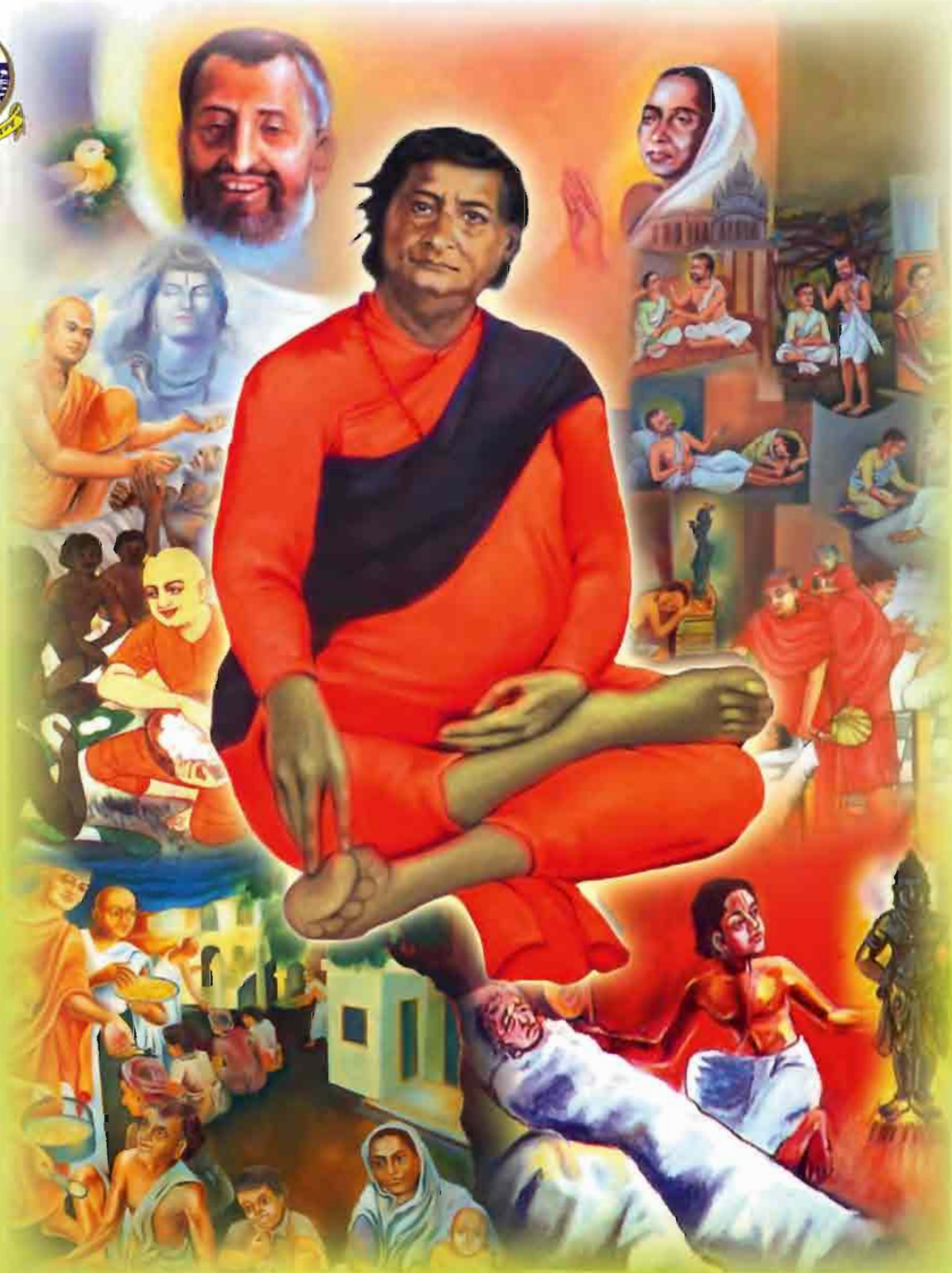
॥ आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च॥

विवेक-ज्योति

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित

हिन्दी मासिक

सितम्बर २०१६

वर्ष ५४
अंक ९

वार्षिक १००/– **एक प्रति १२/–**

५ वर्षों के लिये – रु. ४६०/–
१० वर्षों के लिए – रु. ९००/–
(सदस्यता-शुल्क की राशि इलेक्ट्रॉनिक मनिआर्डर से भेजें अथवा **ऐट पार** चेक – 'रामकृष्ण मिशन' (रायपुर, छत्तीसगढ़) के नाम बनवाएँ
अथवा निम्नलिखित खाते में सीधे जमा कराएँ :
सेन्ट्रल बैंक ऑफ इन्डिया, **अकाउन्ट नम्बर** : 1385116124
IFSC CODE : CBIN0280804
कृपया इसकी सूचना हमें तुरन्त केवल ई-मेल, फोन, एस.एम.एस. अथवा स्कैन द्वारा ही अपना नाम, पूरा पता, **पिन कोड** एवं फोन नम्बर के साथ भेजें।
विदेशों में – वार्षिक ३० यू. एस. डॉलर;
५ वर्षों के लिए १२५ यू. एस. डॉलर (हवाई डाक से)
संस्थाओं के लिये –
वार्षिक १४०/– ; ५ वर्षों के लिये – रु. ६५०/–

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम,
रायपुर – ४९२००१ (छ.ग.)
विवेक-ज्योति दूरभाष : ०९८२७१ ९७५३५
ई-मेल : vivekjyotirkmraipur@gmail.com
आश्रम : ०७७१ – २२२५२६९, ४०३६९५९
(समय : ८.३० से ११.३० और ३ से ६ बजे तक)
रविवार एवं अन्य अवकाश को छोड़कर

अनुक्रमणिका

मुद्रक : संयोग ऑफसेट प्रा. लि., बजरंगनगर, रायपुर (फोन : ८१०९१ २७४०२)

आवरण-पृष्ठ के सम्बन्ध में

देखें, पृ. ४१९

सितम्बर माह के जयन्ती और त्योहार

५	**गणेश चतुर्थी, शिक्षक दिवस**
९	**राधाष्टमी**
२४	**स्वामी अभेदानन्द**
३०	**स्वामी अखण्डानन्द**

विवेक-ज्योति स्थायी कोष

दान-दाता	दान-राशि
श्री कृष्ण मुरारी मित्तल, राकेश मार्केटींग, हैदराबाद	१०००/-
डॉ. श्यामली चटर्जी, माँ सारद पैथोलोजी, रायपुर	१०००/-
श्री आशिष कुमार बॅनर्जी, शंकर नगर, रायपुर	१०००/-
श्रीमती जयन्ती गांगुली, ग्वालियर	२०००/-
श्री लक्ष्मीनारायण तिवारी, माना कैम्प, रायपुर	१०००/-
श्री सुन्दर लाल गुप्ता, भारतेन्दु चौक, जयपुर	१०००/-
श्री नन्दलाल टांटिया, उत्तरकाशी	५२००/-

विवेक-ज्योति पुस्तकालय योजना

क्रमांक	सहयोग-कर्ता	प्राप्त-कर्ता (पुस्तकालय/संस्थान)
९	श्री पी. एस. यादव, दमोह (छ.ग.)	कुशाभाऊ ठाकरे पत्रकारिता विश्वविद्यालय, काठाडीह, रायपुर
१०	श्री रवीन्द्र छाबड़ा, नई दिल्ली	डॉ. सी. वी. रमन युनिवर्सिटी, करगी रोड, बिलासपुर (छ.ग.)
११	श्रीमती जयन्ती गांगुली, ग्वालियर (म.प्र.)	मैट्स युनिवर्सिटी, आरंग, रायपुर, (छ.ग.)
१२	सुश्री सोना देवी मिश्रा, रायपुर (छ.ग)	पं. सुन्दरलाल शर्मा मुक्त विश्वविद्यालय, कोनी, बिलासपुर (छ.ग.)
१३	श्री के. के. प्रसाद, दुर्ग (छ.ग.)	बस्तर विश्वविद्यालय, जगदलपुर, (छ.ग.)
१४	श्री बी. के. गांगुली, रायपुर (छ.ग.)	बिलासपुर विश्वविद्यालय, गाँधी चौक, बिलासपुर (छ.ग.)
१५	श्री निर्मल कुमार पुरोहित, बीकानेर, (राज.)	स्वामी विवेकानन्द टेक्निकल युनिवर्सिटी, भिलाई (छ.ग.)
१६	श्री एफ. सी. कंचन, जयपुर (राज.)	स्वं चन्दुलाल चन्द्राकर, शास. महाविद्यालय, पाटन, दुर्ग (छ.ग.)
१७	श्री मोहनलाल सैनी, दिल्ली	श्री चन्दनलाल नेशनल ईटर कॉलेज, कांधला, जिला-शामली (उ.प.)
१८	श्री मोहनलाल सैनी, दिल्ली	नारायण जनता ईटर कालेज, मंहगी, जिला - सहारनपुर (उ.प.)
१९	श्री नन्दलाल टांटिया, उत्तरकाशी	डॉ. घनश्याम सिंह गुप्त शास. पी. जी. महाविद्यालय, बालोद, (छ.ग.)
२०	श्री नन्दलाल टांटिया, उत्तरकाशी	शास. एन.सी.जैन महाविद्यालय, दल्लीराजहरा, बालोद, (छ.ग.)
२१	श्री नन्दलाल टांटिया, उत्तरकाशी	शासकीय महाविद्यालय, अर्जुन्दा, जिला - बालोद (छ.ग.)
२२	श्री कर्ताराम मोहल, नई दिल्ली	शास. एकलव्य, महाविद्यालय, डोंडीलोहरा, जिला - बालोद (छ.ग.)
२३	श्री एकनाथ किसन, खिर्डेकर, बुलढाना (महा.)	डॉ. खूबचन्द बघेल, शा. पी.जी. महाविद्यालय, भिलाई (छ.ग.)
२४	श्री फूलसाय देवांगन, चाम्पा (छ.ग.)	इंदिरा गाँधी शास. महाविद्यालय, वैशालीनगर, भिलाई (छ.ग.)
२५	श्री पी. पी. शर्मा, भिलाई, (छ.ग.)	शास. महाविद्यालय, जामगाँव, द्वारा - गुंडरदेही, जिला-दुर्ग (छ.ग.)
२६	श्री आशुतोष जोशी, पुणे (महा.)	शास. विवेकानन्द स्नात्कोत्तर महाविद्यालय, मनेन्द्रगढ़, जिला-कोरिया (छ.ग.)

वर्ष ५४ सितम्बर २०१६ अंक ९

वेद में राष्ट्रीय एकता की भावना

समानी व आकूतिः
समाना हृदयानि वः।
समानमस्तु वो मनो
यथा वः सुसहासति।।
(ऋग्वेद १०/१९१/२-४)

हमारे संकल्प एक समान हों। हमारे हृदय समान हों। हमारी हार्दिक भावनाएँ समान हों। सभी लोगों के हृदय में परस्पर प्रेम हो। सभी एक-दूसरे के सुख-दुख में साझीदार बनें। हमारे मन एक हों। प्रत्येक मानव प्रेम एवं सौहार्द की भावना से परिपूर्ण हो।

ॐ सह नाववतु सह नौ भुनक्तु सह वीर्यं करवावहै।
तेजस्विनावधीतमस्तु मा विद्विषावहै ।।
ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ।।
(कृष्णयजुर्वेदीय तैत्तिरीयारण्यक प्रपाठक ८/१)

हम परस्पर एक-दूसरे की रक्षा करें। एक साथ भोजन करें। हम वीर्यशाली, पुरुषार्थी हों, तेजस्वी हों। हम कभी भी किसी से भी द्वेष न करें। सर्वत्र सब प्रकार से सुख और शान्ति हो।

पुरखों की थाती

रक्षितव्यं सदा वाक्यं वाक्याद्भवति नाशनम् ।।५१७

– मनुष्य को चाहिए कि वह अपनी वाणी का संयम करे, क्योंकि अधिक बोलने से कभी-कभी मृत्यु भी हो जाती है ।

राजा मत्तः शिशुश्चैव प्रमदा धनगर्वितः ।
अप्राप्यमपि वाञ्छन्ति किं पुनर्लभ्यतेऽपि यत् ।।५१८।।

– राजा, पागल, बालक, मतवाली स्त्री और धनाभिमानी लोग तो काल्पनिक वस्तु को भी पाने की इच्छा रखते हैं, तो फिर उनमें प्राप्त हो सकने वाली हर वस्तु को पाने की इच्छा तो स्वाभाविक ही है ।

रामस्कन्दं हनूमन्तं वैनतेयं वृकोदरम् ।
शयने स्मरणे नित्यं दुःस्वप्नं तस्य नश्यति ।।५१९।।

– जो व्यक्ति प्रतिदिन रात को सोते समय – श्रीरामचन्द्र, कार्तिकेय, हनुमान, गरुड़ तथा भीम का स्मरण करता है, उसे बुरे सपने नहीं आते ।

रोक-शोक-परिताप-बन्धन-व्यसनानि च ।
आत्मापराधवृक्षाणां फलान्येतानि देहिनाम् ।।५२०।।

– रोग, शोक, सन्ताप, बन्धन और क्लेश – ये सभी मनुष्यों के अपने ही कर्मरूपी वृक्ष के फल हैं ।

रूपयौवन-सम्पन्ना विशाल-कुलसम्भवाः ।
विद्याहीना न शोभन्ते निर्गन्धा किंशुका इव ।।५२१

– बड़े कुल में उत्पन्न हुआ व्यक्ति यदि रूप-यौवन से युक्त होकर भी विद्याहीन है, तो वह उसी प्रकार शोभित नहीं होता जैसे कि सुगन्ध से रहित ढाक के फूल ।

विविध भजन

जय हो ! जय हो ! भवानीनन्दन

स्वामी प्रपत्त्यानन्द

जय गौरीसुत पार्वतीनन्दन।
सकल जगत के सब दुखभंजन।।
उमातनय जगमंगलकारी।
शुभकारक जनसंकटहारी।।
जय गजवदन जय विनायक
त्रिलोकस्वामी जय शिवनन्दन।।१।।

सिद्धिप्रदाता मंगलदाता,
बल-बुद्धि-विद्या शान्तिविधाता।
हे लम्बोदर ! हे गौरीप्रिय !
सुर-नर-मुनि सब करें नित वन्दन।।२।।

हे गणपति सुनो विनती हमारी,
प्रभु-भक्ति नित बढ़े हमारी।
भक्ति-मुक्ति प्रभु-दरशन पावें,
रामकृष्ण हों मम जीवन-धन।।३।।

ज्ञान-भक्ति-तप-नियम न मोरे,
एक आस भरोसा तोरे।
करो कृपा हे शम्भुतनय प्रभु,
शरणागत हैं तेरे चरनन्।।४।।

आदिदेव-सुत शंकरनन्दन,
जय हो जय हो भवानीनन्दन !
जय हो जय हो भवानीनन्दन !
जय हो जय हो भवानीनन्दन ।।५।।

ये जगत बड़ा दुखदायी

स्वामी राजेश्वरानन्द सरस्वती

ये जगत बड़ा दुखदायी, सुख की आस तजो रे भाई।।
उसने ही दुख पाया, सुख की आश रखी जिसने,
इस दुनिया से प्रीति लगाकर, बोलो प्यारे किसने,
कब चैन की बंशी बजाई।। सुख की आस ....
जिसको तूने अपना समझा, निकला वही पराया,
तेरे हुए न कोई लेकिन, तुझको होश न आया,
कई बार ठोकर खाई।। सुख की आस ....
झूठे रिश्ते झूठे नाते, किसका कौन हुआ है,
कब बाजी उलटी पड़ जाए, जीवन एक जुआ है,
परिछाई भी होती पराई ।। सुख की आस ....
दुनिया दिखती नई है, लेकिन खेल पुराने चलते,
दुहाराता इतिहास स्वयं को केवल पात्र बदलते,
बस रीति यही चलि आई।। सुख की आस ....
होता कभी महाभारत, कभी होती है रामायण,
कभी कंस कभी रावण के हित आते हैं नारायण,
कभी कृष्ण कभी रघुराई।। सुख की आस ...
जग से सुख की आस तजकर, राम भरोसे रह ले,
मन को मनमोहन का बनाकर 'राजेश' मुख से कह ले,
श्रीरामशरण सुखदाई।। सुख की आस ...

जाऊँ कहाँ तजि चरण तुम्हारे

मोहनसिंह मनराल

जाऊँ कहाँ तजि चरण तुम्हारे।
तुम ही तारणहार हमारे।।
आये जग में भक्तन कारण देख दुखी जन सारे।
भूल गये अपनी तन की सुधि जड़ जीव पतित उधारे।।
निज मति दुर्गति पाई जग में, करमन की गति न्यारे।
बालक जान हाथ पकड़ लो, हैं जन्मों के दुखियारे।।
तारे कितने पापी-तापी कितनों के दुख हारे।
अभी खड़े हैं कितने सन्मुख मुझसे अधम बिचारे।।
यह तन मन अब तुम्हें समर्पित कुछ न और बिचारे।
ज्ञान-भक्ति की भिक्षा दे दो खड़ा तुम्हारे द्वारे।।
'मुनि' की विनती इतनी ठाकुर अब फिरे न मारे-मारे।
ले लो भार दया अपनी कर हृदय से तुम्हें पुकारे।।

छात्र-छात्राओं के सर्वांगीण चरित्र-निर्माण में शिक्षकों का योगदान

शिक्षा मानव-विकास का प्राण है। शिक्षा मानवीय-जीवन का मेरुदण्ड है। शिक्षा मानवीय उत्कर्ष का प्रथम सोपान है। शिक्षा मानव में मानवता और मानवता से देवत्व, दिव्यत्व में प्रतिष्ठित करने की उत्कृष्ट प्रणाली है। शिक्षा सद्गुणों के प्राकट्य एवं विकसित होने की उत्कृष्ट अनिवार्य विधि है। शिक्षा मानव-चरित्र-निर्माण की आधारशिला है। शिक्षा मानव-जीवन के सर्वांगीण विकास का अपरिहार्य अंग और प्रमुख तत्त्व है।

शिक्षा के बिना मानव अपने में आवश्यक सम्भाव्य सद्गुणों का विकास न कर नर-तन में पशुवत् हो जाता है। इसलिये कहते हैं "**धर्मेण हीनाः पशुभिः समाना**"। धर्म शिक्षा का एक अंग है। धर्महीन व्यक्ति पशु सदृश है। वैसे ही कहा जा सकता है कि शिक्षा के बिना मनुष्य जन्तुवत् है – **शिक्षाविहीना जन्तुसमानाः**। किसी की सूक्ति है –

वरमेको गुणी पुत्रो न च पुत्र शतान्यपि।
न शोभते सभामध्ये हंसमध्ये बको यथा।।

अर्थात् सैकड़ों पुत्रों की अपेक्षा एक गुणवान पुत्र अच्छा है। क्योंकि जैसे बगुलों में कौआ अच्छा नहीं लगता, वैसे योग्य गुणवानों की सभा में मूर्ख सुशोभित नहीं होता।

शिक्षा क्या है?

शिक्षा अध्ययन-अध्यापन की प्रक्रिया है, ग्रहण-वितरण की विधि है, सीखने-सिखाने की शैली है, बनने-बनाने की प्रक्रिया है। शिक्षा व्यक्ति के शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक और अध्यात्म-समन्वित चरित्र का निर्माण करनेवाली, एक आदर्श महामानव बनाने वाली विशेष प्रक्रिया है।

शिक्षा की परिभाषा देते हुए स्वामी विवेकानन्द जी कहते हैं – "शिक्षा उस पूर्णता की अभिव्यक्ति है, जो मनुष्य में पहले से ही विद्यमान है।"

अरस्तू की दृष्टि में – "स्वस्थ शरीर में स्वस्थ मस्तिष्क का सृजन ही शिक्षा है।" – पेस्तालात्सी के अनुसार मानव की आन्तरिक शक्तियों का स्वाभाविक सामंजस्यपूर्ण एवं प्रगतिशील विकास ही शिक्षा है।" हरबर्ट के मतानुसार "शिक्षा जैविक चरित्र का उचित विकास है।" राष्ट्रपिता महात्मा गाँधीजी शिक्षा के प्रति उत्कृष्ट विचार प्रस्तुत करते हुए कहते हैं – "शिक्षा से मेरा तात्पर्य उस प्रक्रिया से है, जो बालक एवं मनुष्य के शरीर एवं आत्मा के सर्वोत्कृष्ट रूपों को प्रस्फुटित कर दे।" हार्न ने शिक्षा की एक पृथक परिभाषा दी – "शिक्षा का अर्थ प्राप्त-ज्ञान का सार्वभौमिक वितरण है।"(उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक,पृ-१०,११)

शिक्षा स्वतन्त्रता का स्वर्णद्वार – जार्ज वाशिंग्टन कारवर ने अपनी शिक्षा की परिभाषा में कहा कि – "शिक्षा स्वतन्त्रता के स्वर्ण-द्वार खोल देती है।" स्वामी विवेकानन्द जी ने भारतीय स्वाधीनता की प्राप्ति और संरक्षण हेतु देश के जन-साधारण में शिक्षा का व्यापक प्रचार-प्रसार किया।

शिक्षा जेलद्वार बन्द करती है – वास्तविक शिक्षा नहीं प्राप्त करने और उसे आत्मसात् नहीं करने के कारण आज देश में विविध भ्रष्टाचारों में जेल की कोठरियाँ भरी रहती हैं। विक्टर ह्युगो ने बहुत पहले कहा था – "शिक्षा स्कूल का द्वार खोलती है और जेल का द्वार बन्द कर देती है।" आज देश की इस विषम परिस्थिति का कारण उचित चरित्र-निर्माणकारी शिक्षा नहीं प्राप्त करना ही है।

शिक्षा की मानव के व्यक्तिगत, पारिवारिक, सामाजिक और राष्ट्र की सर्वतोमुखी प्रगति में महत्त्वपूर्ण भूमिका है। ऐसी जीवनोपयोगी महत्त्वपूर्ण विशेष शिक्षा का प्रारूप कैसा हो और किस प्रकार उसे हमारे देश के बच्चों को प्रदान किया जाय, यह एक विशेष विचारणीय वस्तु है।

चरित्र-निर्माण में शिक्षक की महान भूमिका

उपरोक्त मनीषियों के शिक्षापरक विचार शिक्षा के सर्वांगीण पक्षों को अभिव्यक्त करते हैं। हमारे देश के बच्चों को ऐसी शिक्षा देने और ऐसे सुयोग्य चरित्र-निर्माण के लिये सबसे पहले माता-पिता और दूसरे शिक्षकों का बहुत बड़ा योगदान है। माता-पिता और अभिभावकों के योगदान की चर्चा मैंने अन्यत्र की है। यहाँ मैं शिक्षकों के योगदान की चर्चा करूँगा।

'शिक्षा का अर्थ प्राप्त-ज्ञान का सार्वभौमिक वितरण है' हार्न द्वारा प्रदत्त शिक्षा की यह परिभाषा शिक्षक की ओर इंगित करती है। इसलिये शिक्षक को पहले स्वयं आदर्श चरित्र-निर्माणकारी शिक्षा को सैद्धान्तिक रूप से ठीक-ठीक समझना होगा और उसे अपने जीवन में आत्मसात् करना

होगा, अपने आचरण में लाना होगा, तभी वे अपने छात्रों को वह शिक्षा प्रदान कर सकते हैं, जो सैद्धान्तिक रूप से और बौद्धिक रूप से स्पष्ट होगी तथा जीवन में प्रेरणादायी होगी।

किसी ने कहा था – सामान्य शिक्षक पढ़ाता है। दूसरा शिक्षक समझाता है। तीसरा विशेष शिक्षक प्रेरणा देता है।

इसलिये शिक्षक को पहले स्वयं ज्योतिदीप बनकर प्रकाश विकिरित करना होगा। छात्र-छात्राओं को प्रभावित और प्रेरित करने के लिए पहले आत्मदीप को जलाना होगा, तब उसके सान्निध्य में आने से अन्य दीप प्रज्वलित होंगे। शिक्षक दीप है और शिक्षा दीप-से-दीप जलाने की प्रक्रिया है, जो शिक्षक के द्वारा देश, काल, परिस्थिति और बच्चों के मानसिक स्तर के अनुसार समझकर प्रयोग की जाती है। अत: शिक्षक स्वयं एक छात्र के समान पहले उचित, उत्कृष्ट शिक्षा प्राप्त करें, फिर दूसरों को शिक्षित करें। स्वयं जीवनीदायिनी सद्‌विद्या अर्जित करें और उसके बाद उस विद्या का निस्स्वार्थ भाव से उदारतापूर्वक वितरण करें।

उदारता और निस्स्वार्थता दो शब्दों का प्रयोग मैंने किया है। क्योंकि आज की शिक्षा-प्रणाली में इनका अभाव सुनने को मिलता है। संकीर्णता और स्वार्थ समाज के बड़े शत्रु हैं। इन्हीं से समाज का विघटन और असुरक्षा होती है। ए. बार्टलेट जियामेट्टी ने कहा है – "एक उदार समाज के मूल में उदार शिक्षा होती है और एक उदार शिक्षा के मूल में शिक्षण का कार्य होता है।" यह शिक्षण कार्य शिक्षक के द्वारा होता है। इसलिये शिक्षक को उदार और निस्स्वार्थ अवश्य होना चाहिए।

भारत और विश्व के स्वर्णिम भविष्य-निर्माता शिक्षक

ऐसी महान भूमिका शिक्षकों को निभानी है। ऐसा महान उत्तरदायित्व उनके कन्धों पर है। इसके लिए कमर कसकर उन्हें इस महान कार्यभार के निर्वहण में लग जाना होगा। क्योंकि भारत और विश्वसमुदाय का स्वर्णिम भविष्य उनके हाथों में है।

शिक्षक कौन है? : स्वामी विवेकानन्द की दृष्टि में

स्वामी विवेकानन्द शिक्षक की परिभाषा देते हुए कहते हैं – शिक्षक वही है, जो छात्र को सिखाने के लिये तत्काल उसकी मनोभूमि पर उतर आये और अपनी आत्मा को छात्र की आत्मा से एकरूप कर सके और छात्र की दृष्टि से देख सके, उसी के कानों से सुन सके तथा उसी के मस्तिष्क से समझ सके। ऐसा ही शिक्षक शिक्षा दे सकता है, कोई दूसरा नहीं।" स्वामीजी की यह वाणी शिक्षक में शिक्षकत्व की योग्यता के परीक्षण और प्रशिक्षण की ओर इंगित करती है।

उपनिषद में कहा गया है **'सा विद्या या विमुक्तये'** – जो मुक्त करे वह विद्या है। शिक्षक छात्रों को सदाचार की शिक्षा दें। उन्हें अनैतिकता, भ्रष्टाचार, प्राणघाती भावुकता और राग-द्वेष, असहिष्णुता आदि से मुक्त होने की शिक्षा दें।

जब कोई छात्र-छात्रा विद्यालय में पढ़ने के लिए आते हैं, तो शिक्षक को कम-से-कम उसके प्रति तीन प्रकार का दृष्टिकोण विकसित करना चाहिए –

१. पारिवारिक दृष्टिकोण – जिस प्रकार लोग अपने पुत्र-पुत्रियों, भाई-बहनों का हमेशा विशेष ध्यान रखते हैं, उसी प्रकार सभी छात्र-छात्राओं में आत्मीयता का बोध कर उन्हें प्रेम-स्नेह से शिक्षा और सुसंस्कार प्रदान करें।

२. सामाजिक दृष्टिकोण – आपके शिक्षासंस्थान में आगत सभी बच्चे सम्पूर्ण समाज के हैं। उनमें सामाजिक समरसता की शिक्षा दें।

३. राष्ट्रीय दृष्टिकोण – बच्चे राष्ट्र की सम्पत्ति हैं। राष्ट्र की सेवा के योग्य बनाने का दायित्व आपको सौंपा गया है। अत: इनमें परस्पर प्रेम, त्याग, सहिष्णुता, विनम्रता, सेवा, परोपकार, राष्ट्रप्रेम, सद्भावना और राष्ट्रभक्ति की शिक्षा देकर अपने गुरुतर दायित्व का निर्वाह करें।

सर्वोपरि बच्चे विश्व की धरोहर हैं, सम्पूर्ण संसार की सम्पत्ति हैं। उनमें विश्वबन्धुत्व की भावना का विकास करें। ऐसी महान शिक्षा शिक्षक को प्रदान करनी है।

स्वामी विवेकानन्द ने कहा था, विश्व को बचाने के लिए सबसे पहले भारत को बचाना है। भारत को बचाने के लिये भारत की उदार विद्या, शिक्षा, संस्कृति को भारत के नवनिहालों के मन-मस्तिष्क में समाविष्ट करनी होगी। हमारे सम्माननीय, वन्दनीय शिक्षक-वृन्द बच्चों को ऐसी शिक्षा दें और पुन: भारत को विश्व में गौरवशाली बनाकर अपने महान उत्तरदायित्व का निर्वाह करें। ❍❍❍

शिक्षा : एकमात्र समाधान

स्वामी विवेकानन्द

ज्ञान मनुष्य में निहित है ।

हम जो कहते हैं कि मनुष्य 'जानता' है, उसे ठीक-ठाक मनोवैज्ञानिक भाषा में व्यक्त करने पर हमें कहना चाहिये कि वह 'आविष्कार करता' है । मनुष्य जो कुछ 'सीखता' है, वह वास्तव में 'आविष्कार करना' ही है । आविष्कार का अर्थ है – मनुष्य का अपनी अनन्त ज्ञान-स्वरूप आत्मा के ऊपर से आवरण को हटा लेना ।

हम कहते हैं कि न्यूटन ने गुरुत्वाकर्षण का आविष्कार किया । तो क्या वह आविष्कार किसी कोने में पड़ा हुआ न्यूटन की प्रतीक्षा कर रहा था? वह उसके मन में ही था । समय आया और उसने उसे ढूँढ़ निकाला । संसार ने जितना भी ज्ञान प्राप्त किया है, वह मन से ही निकला है । विश्व का असीम पुस्तकालय तुम्हारे मन में ही विद्यमान है । बाह्य जगत् तो तुम्हें अपने मन के अध्ययन में लगाने के लिये उद्दीपक तथा अवसर मात्र है; पर सर्वदा तुम्हारे अध्ययन का विषय तुम्हारा मन ही रहता है । सेव के गिरने ने न्यूटन को उद्दीपना प्रदान की और उसने अपने मन का अध्ययन किया । उसने अपने मन में पूर्व से स्थित विचार-शृंखला की कड़ियों को एक बार फिर से सँजोया और उनमें एक नयी कड़ी का आविष्कार किया । उसी को हम गुरुत्वाकर्षण का नियम कहते हैं । यह न सेव में था और न पृथ्वी के केन्द्र में स्थित किसी अन्य वस्तु में ।

अतएव सारा ज्ञान – चाहे वह व्यावहारिक हो अथवा पारमार्थिक – मनुष्य के मन में ही निहित है । बहुधा यह प्रकाशित न होकर ढँका रहता है और जब आवरण धीरे-धीरे हटता जाता है, तो हम कहते हैं कि 'हमें ज्ञान हो रहा है' और ज्यों-ज्यों इस आविष्करण की क्रिया बढ़ती जाती है, त्यों-त्यों हमारे ज्ञान की वृद्धि हो जाती है । जिस मनुष्य पर से यह आवरण उठता जा रहा है, वह अन्य व्यक्तियों की अपेक्षा अधिक ज्ञानी है और जिस मनुष्य पर यह आवरण तह-दर-तह पड़ा है, वह अज्ञानी है । जिस मनुष्य पर से यह आवरण बिल्कुल चला जाता है, वह सर्वज्ञ पुरुष कहलाता है । अतीत में कितने सर्वज्ञ व्यक्ति हो चुके हैं और मेरा विश्वास है कि अब भी बहुत से होंगे तथा आगामी युगों में भी ऐसे असंख्य पुरुष जन्म लेंगे ।[१]

शिक्षा का तात्पर्य : शिक्षा क्या है

शिक्षा का अर्थ है, उस पूर्णता की अभिव्यक्ति, जो सब मनुष्यों में पहले ही से विद्यमान है । अत: ... शिक्षक का कार्य केवल रास्ते की सभी रुकावटें हटा देना ही है ।[२]

सच्ची शिक्षा की तो अभी हम लोगों में कल्पना भी नहीं की गयी है ।... यह शब्दों का रटना मात्र नहीं है, तो भी इसे मानसिक शक्तियों का विकास या व्यक्तियों को ठीक ढंग से तथा दक्षतापूर्वक इच्छा करने का प्रशिक्षण कह सकते हैं ।[३]

यंत्रचलित अति विशाल जहाज और महा-बलवान रेल का इंजन जड़ हैं, वे हिलते हैं और चलते हैं, परन्तु वे जड़ हैं । और वह जो दूर से नन्हा-सा कीड़ा अपने जीवन की रक्षा के लिये रेल की पटरी से हट गया, वह चैतन्य क्यों है? यंत्र में इच्छा-शक्ति का कोई विकास नहीं है । यंत्र कभी नियम का उल्लंघन करने की इच्छा नहीं रखता । कीड़ा नियम का विरोध करना चाहता है और नियम के विरुद्ध जाता है, चाहे उस प्रयत्न में वह सफल हो, अथवा असफल, इसलिये वह चेतन है । जिस अंश में इच्छा-शक्ति के प्रकट होने में सफलता होती है, उसी अंश में सुख अधिक होता है और जीव उतना ही ऊँचा होता है । परमेश्वर की इच्छा-शक्ति पूर्ण रूप से सफल होती है, इसलिये वह उच्चतम है ।

शिक्षा किसे कहते हैं? क्या वह पठन मात्र है? नहीं । क्या वह नाना प्रकार का ज्ञानार्जन है? नहीं, वह भी नहीं । **–जिस संयम के द्वारा इच्छा-शक्ति का प्रवाह तथा विकास वश में लाया जाता है और फलदायी होता है, उसे शिक्षा कहते हैं ।** अब सोचो कि क्या वह शिक्षा है, जिसने निरन्तर इच्छा-शक्ति को बलपूर्वक पीढ़ी-दर-पीढ़ी रोककर प्राय: नष्ट कर दिया है, जिसके प्रभाव से नये विचारों की तो बात ही जाने दो, पुराने विचार भी एक-एक कर लोप होते चले जा रहे हैं; क्या वह शिक्षा है, जो मनुष्य को धीरे-धीरे यंत्र बना रही है?[४]

जानकारियों से मन को भर देना ही शिक्षा नहीं है । (शिक्षा का आदर्श है) मनरूपी यंत्र को योग्य बनाना और उस पर पूर्ण अधिकार प्राप्त करना ।[५] ○○○

१. विवेकानन्द साहित्य, (संस्करण १९८९) खण्ड ३, पृ. ३; **२**. वही, खण्ड २, पृ. ३२८; **३**. वही, खण्ड ४, पृ. २६८; **४**. वही, खण्ड ७, पृ. ३५८; **५**. वही, खण्ड ४, पृ. १५७
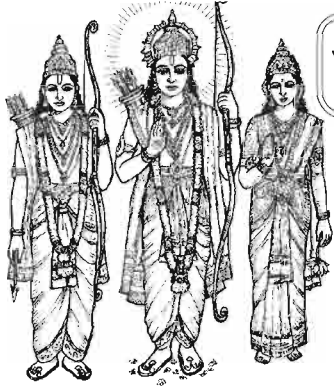
यथार्थ शरणागति का स्वरूप (१/१)

पं. रामकिंकर उपाध्याय

(पं रामकिंकर महाराज श्रीरामचरितमानस के अप्रतिम विलक्षण व्याख्याकार हैं। रामचरितमानस में रस है, इसे सभी जानते हैं और कहते हैं, किन्तु रामचरितमानस में रहस्य है, इसके उद्‌घाटक 'युगतुलसी' की उपाधि से विभूषित श्रीरामकिंकर जी महाराज हैं। उन्होंने यह प्रवचन रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के पावन प्रांगण में १९९२ में विवेकानन्द जयन्ती के उपलक्ष्य में दिया था। 'विवेक-ज्योति' हेतु इसका टेप से अनुलिखन श्रीराम संगीत महाविद्यालय, रायपुर के सेवानिवृत्त प्राध्यापक स्वर्गीय श्री राजेन्द्र तिवारी जी और सम्पादन स्वामी प्रपत्त्यानन्द जी ने किया है। – सं.)

चलेउ हरषि रघुनायक पाहीं
करत मनोरथ बहु मन माहीं।।
देखिहउँ जाइ चरन जलजाता।
अरुन मृदुल सेवक सुखदाता।।
जे पद परसि तरी रिषिनारी।
दंडक कानन पावनकारी।।
जे पद जनकसुताँ उर लाए।
कपट कुरंग संग धर धाए।।
हर उर सर सरोज पद जेई।
अहोभाग्य मैं देखिहऊँ तेई।।
(५/४१/४-८)

जिन्ह पायन्ह के पादुकन्हि भरतु रहे मन लाइ।
ते पद आजु बिलोकिहउँ इन्ह नयनन्हि अब जाइ।।
(५/४२)

परम श्रद्धेय स्वामी सत्यरूपानन्दजी महाराज, अन्य समुपस्थित संतवृन्द, भावुक श्रोतागण एवं भक्तिमती माताओ ! आप सबके चरणों में मैं नमन करता हूँ। मैं अपने आपको बड़ा सौभाग्यशाली अनुभव करता हूँ कि प्रारम्भ से ही, बाल्यकाल से ही संतों की कृपा मुझे प्राप्त होती रही है। इस कृपा को मैं प्रभु की अहैतुकी कृपा के रूप में देखता हूँ। परम श्रद्धेय स्वामीजी महाराज जो कुछ कह रहे थे, वह तो उनके संतत्व का ही परिचायक है। इतनी निरभिमानता अत्यन्त दुर्लभ है। जहाँ त्याग, वैराग्य और सारा जीवन ही समर्पित हो, वहाँ पर बहुधा अपनी विशिष्टता का एक सात्त्विक अभिमान पाया जाता है। पर श्रद्धेय स्वामीजी महाराज तो इतने विनम्र हैं। मैं तो स्वयं अपने आप में अनुभव करता हूँ। वे स्वयं अपने आप में एक दिव्य अनुभूति हैं। वे जब अपने प्रश्नों की बात कर रहे थे, तो मुझे रामायण की एक बात ध्यान में आई। जब पक्षिराज गरुड़ अपना एक संशय लेकर कागभुशुण्डिजी के पास गये, तो कागभुशुण्डिजी ने यह सोचा कि पक्षिराज को भ्रम हो गया है और वे मेरे पास आए हैं, किन्तु क्या यह बात सही हो सकती है? तब कागभुशुण्डिजी ने गरुड़ जी से कहा कि आप मुझसे अधिक ज्ञानी हैं, भक्त हैं, पर आप यहाँ क्यों आए हैं, क्या मुझे आपसे अधिक पता है। यह बड़ी विचित्र बात उन्होंने कही। आप तो कह रहे हैं कि मैं संशयग्रस्त होकर आया हुआ हूँ, पर मुझे प्रभु ने बता दिया है कि ऐसी कोई बात नहीं है।

पठइ मोह मिस खगपति तोही
रघुपति दीन्हि बड़ाई मोही।।७/६९/४

प्रभु ने मुझे बड़प्पन देने के लिए ही यह एक नाट्य रचा है और ऐसा प्रस्तुत किया कि आप मोहग्रस्त, संशयग्रस्त हो गये हैं। इस तरह से प्रभु ने आपके माध्यम से मुझे एक बड़प्पन प्रदान किया और प्रभु के चरित्र को सुनाने का अवसर प्रदान किया। वही पंक्ति यह कौवा भी दुहराना चाहेगा। श्रद्धेय स्वामीजी जब जिज्ञासु के रूप में अपनी बात रखते हैं, तो यह वस्तुत: आपके स्वरूप के अनुरूप ही है। इसके लिये मैं आपके प्रति हार्दिक साधुवाद प्रगट करता हूँ। श्रद्धेय स्वामीजी महाराज ने पूर्व वर्ष में जो प्रसंग चल रहा था, उसी का उल्लेख किया। वह तो व्यास पद्धति है। वक्ता तो व्यास हैं और स्वामीजी ने उसे समास में कहा है –

व्यास समास सुमति अनुरूप।

इसलिये महाराजजी ने जो प्रश्न रखे हैं, उसके सम्बन्ध में आपके समक्ष कुछ बातें रखने की चेष्टा की जाएगी।

स्वामीजी ने यह बात मुझसे मध्याह्न में ही कही थी, पर प्रसंग का चुनाव नहीं हुआ था। मैं स्वयं भी नहीं कर पाया था। अभी मैं यहाँ से कुछ दूर परिभ्रमण करने के लिये गया था, तो हमारे डॉ. नवनीत ने एक कैसेट लगा दी और संयोग से वह विभीषण शरणागति की थी, तो लगा कि शायद इस प्रसंग का चुनाव करने के लिए ही इस परिभ्रमण की योजना बनी। सुखद आश्चर्य तब हुआ, जब अचानक ही मैंने रामायण को खोला, तो ठीक वही विभीषण शरणागति का प्रसंग ही खुल गया। तो इसे यूँ कह सकते हैं कि मूलसूत्र प्रश्न का स्वामीजी ने दिया और प्रसंग प्रभु ने चुन दिया। यंत्र को तो बोलना ही है। तो आइए, इस प्रसंग को केन्द्र बनाकर व्यक्ति और साधक के जीवन में जो समस्याएँ आती हैं, उस पर दृष्टि डालने की चेष्टा की जाय।

विभीषण को गोस्वामीजी ने जो संज्ञा दी, वह संज्ञा बड़े महत्त्व की है। इतिहास में विभीषण लंकाधिपति रावण का छोटा भाई है, विश्रवा मुनि का पुत्र है, पर गोस्वामीजी विनय पत्रिका में स्पष्टीकरण करते हुए कहते हैं कि लंकाधिपति रावण का भाई विभीषण तो इतिहास का सत्य है, पर संसार के जो समस्त जीव हैं, वे विभीषण ही हैं। विभीषण मानो मूर्तिमान जीव है। विभीषण की जो समस्या है, वह हम सबकी समस्या है। उन सब समस्याओं का समाधान जिस रूप में प्रस्तुत किया गया, आइए, उस पर एक दृष्टि डालने की चेष्टा करें।

विभीषण की स्थिति यह है कि वह समुद्र से घिरी हुई लंका में निवास करता है। रावण का छोटा भाई है, पर रावण से उसकी प्रवृत्तियाँ भिन्न हैं। रावण का जो जीवन दर्शन है, वह भोगवादी दर्शन है। रावण बड़ा पण्डित और बड़ा तपस्वी भी है, अनेक विशेषताओं से युक्त होते हुए भी अगर वह योगी भी है, तो लक्ष्य उसका भोग है। रावण का जीवन-दर्शन मूलत: भोगवादी जीवन-दर्शन ही है। वह भोग के लिये ही तपस्या करता है, योगाभ्यास भी करता है। वह इस योगाभ्यास की प्रक्रिया में कितने आगे बढ़ जाता है, इसका संकेत आपको रावण के उस संदर्भ में मिलेगा, जब लंका में युद्ध हो रहा है। त्रिजटा श्रीसीताजी को युद्ध का समाचार दिया करती थी। श्रीसीताजी की यह धारणा थी कि सभी योद्धा मारे जा चुके हैं और केवल रावण ही शेष है, अब तो युद्ध समाप्त ही होने वाला है, प्रभु के बाण तो अमोघ हैं और रावण की मृत्यु अनिवार्य है। पर एक दिन, दो दिन, दिन-पर-दिन व्यतीत होते गये और रावण की मृत्यु का समाचार नहीं मिला। श्रीसीताजी की व्याकुलता की कोई सीमा नहीं रही। उन्होंने त्रिजटा से कहा कि मुझे तो ऐसा लगता है कि रावण अगर अब भी जीवित है, तो वह मेरे दुर्भाग्य ही के कारण होगा। जिस दैव ने लक्ष्मण के लिये मेरे द्वारा कटूक्तियों का प्रयोग कराया, जिस दैव ने अन्त:करण में मृग के लिये प्रलोभन उत्पन्न कर दिया, अगर वही दैव विपरीत हो, करके रावण को जीवित रखा है, मृत्यु नहीं होने दे रहा है, तो इसे मेरा दुर्भाग्य ही कहा जाना चाहिये। किन्तु त्रिजटा ने जो उत्तर दिया, उससे यह पता चलता है कि सचमुच रावण में कितनी क्षमता थी। योगियों के द्वारा जिस मन और बुद्धि की, जिन समस्त क्रियाओं को नियंत्रित करने की चेष्टा की जाती है, योगी जो मन को केन्द्र बनाकर मन को एकाग्र करता है, वह क्षमता रावण में किस सीमा तक थी, इसका परिचय वहाँ मिलता है। साधारणतया आज जिनको उच्चकोटि के योगी की संज्ञा दी जाती है, उसकी तो कल्पना भी नहीं की जा सकती। त्रिजटा ने श्रीसीता जी से कहा कि आप जो कह रही हैं कि आपके दुर्भाग्य से रावण की मृत्यु नहीं हो रही है, तो वह सत्य नहीं है। पर रावण के मृत्यु न होने में आप ही कारण हैं। उसने जो सूत्र दिया वह बड़ा अद्भुत है। त्रिजटा ने सीताजी से कहा कि भगवान राम यद्यपि रावण की भुजाएँ और सिर काट लेते हैं, किन्तु समस्या यह है कि रावण की भुजाएँ और सिर बार-बार उत्पन्न हो जाते हैं। रावण की मृत्यु के लिये आवश्यक है कि श्रीराम रावण के हृदय पर भी प्रहार करें। यह हमारे आपके जीवन का भी सत्य है, समस्या है। श्रद्धेय स्वामीजी ने जैसा संकेत किया कि व्यक्ति के सामने सबसे बड़ी समस्या यह है कि वह बुद्धि से जानता है कि क्या सही है, जो नहीं जानते उनकी बात जाने दें । वह व्यक्ति तो अज्ञानी है जिसे ज्ञात नहीं है कि क्या करना चाहिये, क्या नहीं करना चाहिये, किन्तु जिन्हें ज्ञात है, क्या वे भी जाने हुए सत्य को जीवन में उतार पाते हैं? क्या वे भी जिसे जानते हैं, उसे जीवन में क्रियान्वित कर पाते हैं? और उसका उत्तर यही है कि ऐसा होता नहीं है। बुद्धिपूर्वक बात कही जाती है, सुनी जाती है, समझ में आती है, पर ऐसा होते हुए भी यह समस्या अनादि काल से व्यक्ति के सामने आती रही है, विशेष रूप से साधकों के सामने आती रही है कि जिसे हम जानते हैं उसे क्रियान्वित क्यों नहीं कर

पाते। अर्जुन ने भी यही संकेत किया। उसने भगवान से यही कहा कि मैं नहीं समझ पाता कि व्यक्ति जानते हुए भी बुराई की ओर अग्रसर क्यों होता है? ऐसा लगता है कि जैसे कोई बलपूर्वक उससे वह कार्य करा रहा है –

अनिच्छन्नपि वार्ष्णेय बलादिव नियोजितः।। (गीता,३.३६)

इसका कारण क्या है? यह प्रश्न अर्जुन के सामने भी था और यों कहिए तो दुर्योधन के सामने भी था। लेकिन दुर्योधन जैसे पात्र तो अपने आप को भुलावा देने की कला में निपुण होते ही हैं। इस प्रकार के जो लोग होते हैं, वे अपनी बुद्धि से अपनी दुर्बलता को ऐसा रूप दे देते हैं, जिससे कहीं-न-कहीं यह सिद्ध कर देते हैं कि मैं तो निर्दोष हूँ । दुर्योधन के संदर्भ में यह प्रसिद्ध श्लोक है, उसने कहा – **जानामि धर्मं न च मे प्रवृत्तिः** – मैं धर्म जानता हूँ पर उस दिशा में मेरी प्रवृत्ति नहीं है। मैं जानता हूँ कि यह अधर्म है, पर उससे मैं छूट नहीं पाता। दुर्योधन की इस बात का अनुभव प्रत्येक व्यक्ति को होता है। पर दुर्योधन ने उसको नया मोड़ दे दिया। उसने जो कहा वह वाक्य भी शास्त्र का ही है। वह वाक्य भी जिस संदर्भ में, जिस रूप में प्रस्तुत किया गया है, उसे कई लोग प्रस्तुत करते हैं। उसमें संकेत यही है, बार-बार यह कहा गया, भगवान कृष्ण भी यह कहते हैं –

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया।।

(गीता, १८.६१)

प्रत्येक व्यक्ति के हृदय में ईश्वर विराजमान है और वही संसार को नचा रहा है। रामचरितमानस में भी यही वाक्य कहा गया –

नट मरकट इव सबहि नचावत।
रामु खगेस बेद अस गावत।।४/६/२४
उमा दारु जोषित की नाईं।
सबहि नचावत रामु गोसाईं।। ४/१०/७

तो चाहे गीता हो, चाहे रामायण हो, बार-बार यह बात कही जाती है कि ईश्वर के द्वारा ही उसके संकल्प से यह समस्त सृष्टि चल रही है। किन्तु किस वाक्य का हम किस दिशा में उपयोग करते हैं, यह महत्त्वपूर्ण है। वाक्य किसके लिये है, किसके द्वारा कहा जाना चाहिये, और उस वाक्य के पीछे जो तात्पर्य है, उसे अगर भुला दें, तो इस पंक्ति का दुरुपयोग हो सकता है। लोग दुरुपयोग करते भी हैं। दुर्योधन के द्वारा भी दुरुपयोग हुआ। उसने कहा कि मैं जानता हूँ कि धर्म क्या होता है, पर मैं कर नहीं पाता, जानता हूँ, अधर्म क्या है, पर छोड़ नहीं पाता। अब आप सूत्र पर दृष्टि डालें। जब अर्जुन ने प्रश्न किया, तो भगवान यह कह सकते थे कि मैं ही सब कुछ कराता हूँ। क्योंकि गीता में स्वयं वे कह ही चुके हैं। पर भगवान ने तो यह नहीं कहा। भगवान ने यह नहीं कहा कि ये जितने बुरे कार्य हैं या जो मनुष्य की वृत्तियाँ है, उसका संचालक मैं हूँ। एक प्रसंग में वे कह चुके हैं, पर अर्जुन से उन्होंने स्पष्ट कह दिया –

काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः।
महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम्।।

(गीता, ३.३७)

अर्जुन, जो मनुष्य के मन को बुराई की ओर ले जाने वाले हैं, वे काम हैं, क्रोध हैं और ये जो पापमय दुर्गुण हैं, तुम इनसे लड़ो, इनका विनाश करो। कितना संतुलित सूत्र है। मानो उसका अभिप्राय यह है कि भगवान इससे अर्जुन को यह नहीं कह देते कि अर्जुन, तुम चिन्ता मत करो, वह तो सब मैं ही करा रहा हूँ। भगवान कहते हैं कि इन्हें शत्रु समझो और इनका विनाश करो।

एक बड़ा सार्थक सुन्दर प्रसंग आता है। दुर्योधन ने यह नहीं कहा कि यह धर्म जो मैं नहीं कर पाता तो उसका कारण काम, क्रोध, मोह, मेरा स्वार्थ या मेरा अहंकार है। अगर वह यह कहता, तो वह साधक की स्थिति होती – मैं क्या करूँ, मेरे हृदय में ऐसी दुर्बलता है, मेरे हृदय में ऐसे दोष हैं, जिसके कारण हम उसे क्रियान्वित नहीं कर पाते । पर उसने तो यह वाक्य कहकर छुट्टी पा लिया। क्या कहा उसने? –

जानामि धर्मं न च मे प्रवृत्तिः
जानाम्यधर्मं न च मे निवृत्तिः।
केनापि देवेन हृदिस्थितेन
यथा नियुक्तोऽसि तथा करोमि।।

कोई देवता मेरे अन्त:करण में रहकर जैसे मुझसे करा रहा है, वैसे मैं कर रहा हूँ। यही वाक्य का दुरुपयोग है, यही दुर्योधन के विनाश का कारण बनता है। **(क्रमशः)**

सारगाछी की स्मृतियाँ (४७)

स्वामी सुहितानन्द

स्वामी प्रेमेशानन्द

(स्वामी सुहितानन्द जी महाराज रामकृष्ण मठ-मिशन के महासचिव हैं। महाराजजी जगजननी श्रीमाँ सारदा के शिष्य स्वामी प्रेमेशानन्द जी महाराज के अनन्य निष्ठावान सेवक थे। उन्होंने समय-समय पर महाराजजी के साथ हुए वार्तालापों के कुछ अंश अपनी डायरी में गोपनीय ढंग से लिखकर रखा था, जो साधकों के लिये अत्यन्त उपयोगी है। 'उद्बोधन' बँगला मासिक पत्रिका में यह मई-२०१२ से अनवरत प्रकाशित हो रहा है। पूज्य महासचिव महाराज की अनुमति से इसका अनुवाद रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के स्वामी प्रपत्त्यानन्द और वाराणसी के रामकुमार गौड़ ने किया है, जिसे 'विवेक-ज्योति' में क्रमश: प्रकाशित किया जा रहा है। – सं.)

२४-९-१९६०

महाराज ने स्वामीजी के 'वर्तमान भारत' पुस्तक से प्रत्येक शब्द अक्षरश: पढ़ने को कहा। थोड़ी देर बाद ही वे कहने लगे, "देश जैसे ही पुरोहित प्रधान हुआ है, वैसे ही देश से अधिकांश धर्म का लोप होने लगा। साधारण लोग कुछ समझते नहीं, समझना भी नहीं चाहते। वे देखते हैं कि पुरोहितों के टं-टं घंटा बजा देने से, उन्हें दो पैसे दे देने से यदि धर्म हो जाता है, तो फिर इतना झमेला करने कौन जाय? वे लोग धर्म का सारा भार पुरोहित के ऊपर डालकर निश्चिन्त हो जाते हैं। धूर्त पुरोहितगण मूर्ख जनता को ठगने के लिये दिनोंदिन एक-एक श्लोक बनाते रहते हैं तथा अनेक प्रकार के आचार-अनुष्ठान की रचना करते रहते हैं। इसके परिणामस्वरूप धर्म ऐसा जटिल हो जाता है कि यह वास्तव में क्या वस्तु है, यह समझ में नहीं आता।

देवी के समक्ष पशु-बलि दी जाती है। इसका वास्तविक तात्पर्य था – मनुष्य अपने पशुत्व की देवी के श्रीचरणों में बलि देगा। अब घटना देखो ! वह कितना नृशंस हो चुका है। राजसूय यज्ञ दुर्गापूजा के रूप में परिणत हो चुका है। जब वैदिक कर्मकाण्ड प्रबल हो गया, तब केवल पशुरक्त और यज्ञधूम की भरमार थी। पुरोहितों के अधिकार में पड़कर धर्म प्राय: समाप्त होने पर आ गया। तब बुद्ध आए, उन्होंने सहज-सरल धर्म का प्रचार किया – मनुष्य का असली धर्म आन्तरिक है, वह स्वयं का चिन्तन करके ही बुद्ध होगा, निर्वाण प्राप्त करेगा। आध्यात्मिक चिन्तन सबसे सरल चिन्तन है, किन्तु कुसंस्कारों के कारण यह कठिन हो गया। तब बुद्ध की करुणा और प्रेम झुंड-के-झुंड लोगों को आकर्षित करने लगे। सभी मोक्ष के मार्ग पर आने लगे। किन्तु जन्म-जन्म तक प्रयत्न करने के पश्चात् अन्तिम जन्म में संन्यासी होगा – सुसंस्कृत, सभ्य, आचार-विचार एवं सूक्ष्म बोधशक्ति के धारक और वाहक के रूप में होगा। लेकिन मान-प्रतिष्ठा, भोजन-भवन की सुख-सुविधा के लोभ में 'जितने मुंडित सिर वाले थे वन में, सब के सब आ गए कीर्तन में। हँसिया को तोड़कर बना लिया करताल !' अर्थात् अवसर का लाभ उठाकर अनधिकारी भी सुयोग्य लोगों के दल में शामिल हो गए। इसके परिणामस्वरूप उन लोगों में बहुत से अवगुण आ गए। उनका पतन हो गया। इस बात को मानना होगा। बौद्ध धर्म ने सनातन हिन्दू अद्वैतवाद का ही प्रचार किया था। संसार के दूसरे जितने ईसाई, मुसलमान, जरथ्रुष्ट्र, कन्फ्यूशियस धर्म हैं, सब-के-सब बौद्ध धर्म की ही अनुगूँज हैं।

बौद्ध संन्यासी–संन्यासिनियों में जब अनाचार की प्रबलता हो गई, जब वामाचार के अनाचार से सारा देश व्याप्त हो गया, तांत्रिक व्याभिचार से सम्पूर्ण देश जर्जरित हो गया, तब एक ओर कुमारिल भट्ट वैदिक कर्मकाण्ड और दूसरी ओर शंकराचार्य हिन्दू अद्वैतवाद लेकर हिन्दू धर्म की रक्षा के लिये आविर्भूत हुए। किन्तु किसी ने भी जनसाधारण के लिये धर्मप्रचार नहीं किया। उन लोगों का धर्म केवल बौद्धिक लोगों के लिये था। इसके बाद रामानुज और अन्त में चैतन्यदेव ने केवल नाम के बल पर, भक्ति की प्रबलता से सारे देश को व्याप्त कर दिया। जिस प्रकार मुसलमान के लिए अल्लाह को कबूल करने से ही धर्म होता है, उसी प्रकार चैतन्यदेव ने प्रचार किया – केवल हरिनाम-गान करने से ही वह वैष्णव होगा, हिन्दू होगा। इसके कारण हिन्दू धर्म सुरक्षित हो गया। उन्होंने प्रेम, कीर्तन में सारे देश को मतवाला कर दिया। प्राचीन बौद्ध मतावलम्बियों में से बहुत से लोगों ने हिन्दू धर्म, वैष्णव

धर्म का कुछ अंश लेकर युगी एवं वैरागी सम्प्रदाय बना दिया, कुछ लोगों ने तांत्रिक होकर वैदिक कर्मकाण्ड का कुछ अंश ग्रहण कर लिया। जो भी हो, चैतन्यदेव के द्वारा जनसाधारण में भावान्दोलन के कारण वैष्णवों में खूब सदाचार विनम्रता दृष्टिगोचर हुई। उस समय मुसलमानों का शासन रहने के कारण विनम्रता नहीं रहने से तथा उनके साथ प्रत्यक्ष विवाद करने पर बड़े संकट की सम्भावना थी।

२५-०९-१९६०

एक साधु एक बहुत बड़े कालेज के प्राचार्य हैं। वे कुछ दिनों के लिए ऋषिकेश चले गए।

महाराज – देखो, इतना सम्मान, प्रतिष्ठा, सुख-सुविधा का जीवन छोड़कर चले जाना एक वीर पुरुष का काम है। अच्छा आधार है, अच्छे संस्कार हैं। किन्तु एक अन्य दृष्टिकोण भी है। ऋषिकेश से वापस आने पर बन्धु-मित्रों के बीच बहुत सम्मान मिलेगा, इतना नाम-यश होगा ! उसके साथ ही यह प्रमाण पत्र भी मिलेगा कि ये साधु ऋषिकेश से वापस आए हुए हैं। इन सबका भी ध्यान रखना पड़ता है।

ब्राह्मण पुरोहित लोग बहुत रजोगुणी होते हैं – अनेक प्रकार के हाव-भाव, हाथ हिलाना, श्लोक बोलना, होम-यज्ञ कराना। देखो न, जो तांत्रिक होते हैं, वे रजोगुणी होते हैं, ललाट में लाल चंदन इत्यादि लगाते हैं, कृष्ण भक्त प्रेमिक होते हैं, चैतन्यदेव के भक्त भावुक होते हैं और ठाकुर के भक्त प्रशान्तचित्त सौम्य, शान्त होते हैं।

ब्रह्मचारी – संन्यासी के लिए क्या श्रीश्रीचण्डी (दुर्गासप्तशती) ग्रन्थ पढ़ने की कोई आवश्यकता है? या केवल गीता पढ़ने से ही काम चल जायेगा?

महाराज – श्रीश्रीचण्डी में भारतीय संस्कृति की अनेक बातें जानने को मिलती हैं। यद्यपि यह पुस्तक संन्यासी को पढ़ना आवश्यक नहीं है, तथापि भारतीय संस्कृति के सम्बन्ध में जानने के लिए यह पुस्तक पठनीय है।

श्री श्री चण्डी का मूल प्रतिपाद्य सगुण ब्रह्म है। आकाश और प्राण के सम्मिलन से सृष्टि आरम्भ होती है। उसे ही चण्डी, जगद्धात्री, दुर्गा आदि विविध रूपों में वर्णित किया गया है। माँ काली और शिव का रूपक भी निर्गुण-सगुण ब्रह्म है। इससे ही क्रमशः वृक्ष, पत्थर, सर्प की पूजा प्रचलित हुई।

जिनके जीवन में ईश्वर की आवश्यकता का अनुभव नहीं हुआ, वे महापुरुषों के जीवन में केवल कमी ही देखते हैं। क्यों देखते हैं, इसे जानते हो? जिनका मन दुर्बल है, वे अपनी दुर्बलता का समर्थन पाने के लिए महापुरुषों की जीवनी में कहाँ, क्या-क्या दुर्बलताएँ हैं, उसे खोजते रहते हैं। वे कहते हैं – स्वामीजी में भी तो मान-यश की अभिलाषा थी !

८-१०-१९६०

महाराज – अनेक लोग परिव्राजक बनकर भ्रमण करते रहते हैं, किन्तु उनका उद्देश्य निश्चित नहीं रहता। वह एक तरह से शोर करना है। किन्तु संन्यासी का उद्देश्य रजोगुण को समाप्त करने का प्रयत्न करना होगा। जब भी जहाँ भी वह जायेगा, उसके भीतर से आध्यात्मिक विचार आयेगा, सुन्दर दृश्य देखकर वह स्रष्टा का स्मरण करेगा। इसी तरह धीरे-धीरे वह मन को अन्तर्मुखी करेगा। परिव्राजक होने का उद्देश्य है – किसी भी वस्तु में आसक्ति नहीं होगी।

सम्भवतः कोई साधक पचास वर्षों तक साधना कर सकता है। दस जन्मों पूर्व उसने कुछ खराब कर्म किए थे। अब अचानक यदि उसी प्रकार की परिस्थिति आ जाय, तो हो सकता है वह पुनः खराब कर्म कर सकता है। इसीलिए हमेशा सावधान रहना चाहिए। कौन जाने किस दुर्बल क्षण में क्या हो जाय।

वैराग्य है व्यक्तिपरक कर्म – वह अपने भीतर से आयेगा। उस वैराग्य को तीव्र और परिपक्व करने के लिये अभ्यासयोग है, अर्थात् दस लोगों के साथ विधिवत् निर्दिष्ट नियमानुसार चलना होगा। **(क्रमशः)**

मूलमन्त्र बाँटते रहे

कमलकिशोर 'भावुक'

गौरवर्ण तन, मुख तेज, हंस-सा हृदय,
द्वेष-दम्भ को न रंचमात्र गाँठते रहे।
ज्ञान के सुमन चुने लोकहित हेतु और,
पन्थ के समग्र अज्ञ-शूल छाँटते रहे।।
आशावादी सोच, नवचेतना-प्रतीक वह,
गहन निराशा को सदैव डाँटते रहे ।
'रुको नही जब तक लक्ष्य प्राप्त हो न जाए'
जन-जन में ये मूल मन्त्र बाँटते रहे।।

स्वदेश तथा विश्व के लिए भारत का सन्देश

स्वामी नित्यस्वरूपानन्द

भारत का आध्यात्मिक अवदान ही 'मानव मुक्ति का एकमात्र पथ' है

पृथ्वी की पिछली अनेक शताब्दियों के इतिहास का अवलोकन करने पर हम पाते हैं कि भारत की देन ही मानव-सभ्यता के विकास को समृद्ध करती आ रही है। जो अन्तर्दृष्टि भारतीय ध्यान-धारणा की प्रमुख विशेषता है, आज विश्व में उसकी आवश्यकता अत्यन्त तीव्रतापूर्वक अनुभव की जा रही है। आध्यात्मिक अन्तर्मुखता, मानव सत्ता का अभिन्नत्व तथा विभिन्न भावधाराओं का आन्तरिक एकत्व, ये ही भारतीय जीवन के मूल सुर रहे हैं। केवल उनके द्वारा ही एक ऐसी दृढ़ नींव का निर्माण किया जा सकता है, जिस पर एक स्थायी राष्ट्रसंघ का गठन सम्भव है।

अर्नाल्ड टायन्बी ने विशेष जोर देते हुए कहा है विश्व के अस्तित्व की रक्षा के लिए आज विश्व को भारत के आध्यात्मिक आदर्श की आवश्यकता और महत्त्व को स्वीकार करना होगा । स्वामी घनानन्द द्वारा लिखित – Sri Ramakrishna and His Unique Message नामक ग्रन्थ के तृतीय संस्करण की भूमिका में टायनबी लिखते हैं – ''उन्होंने (श्रीरामकृष्ण) एक ऐसे विश्व में जन्म लिया था, जो उनके जीवन-काल में ही इतिहास में प्रथम बार वास्तविक रूप में जुड़कर एक होता जा रहा था। आज भी हम विश्व-इतिहास के उसी सन्धिकाल में से होकर गुजर रहे हैं, परन्तु अब यह बात स्पष्ट होती जा रही है कि यदि मानवजाति को आत्म-हनन से बचना है, तो जो अध्याय पाश्चात्य देशों के संयोग से प्रारम्भ हुआ था, उसका समापन भारतीय जीवन-साधना के आदर्श में करना होगा। वर्तमान युग में समग्र विश्व पाश्चात्य तकनीकी विद्या की सहायता से भौतिक स्तर पर एक हो रहा है। परन्तु इस पाश्चात्य निपुणता ने एक ओर जहाँ दूरियाँ समाप्त कर दी हैं, वहीं दूसरी ओर वह विश्व को भयंकर मारणास्त्रों से लैस भी कर दे रही है। ऐसे समय में जब विश्व के लोग आमने-सामने आकर खड़े हुए हैं, पर अभी एक-दूसरे को जानने का और परस्पर प्रेम करने का अवसर उन्हें नहीं मिला है। मानव-इतिहास के इस अत्यन्त खतरनाक क्षण में मानवता के उद्धार का एकमात्र उपाय है भारतीय पथ। सम्राट अशोक और महात्मा गाँधी का अहिंसावाद तथा श्रीरामकृष्ण का सर्वधर्म-समन्वय के प्रत्यक्ष दृष्टान्त में हमें एक ऐसा दृष्टिकोण और आध्यात्मिक भाव प्राप्त होता है, जो विश्ववासियों को एक परिवार के रूप में संगठित कर सकता है। इस आणविक युग में सर्वनाश से बचने का एकमात्र यही विकल्प है।

वर्तमान अणु-युग में उपयोगिता की दृष्टि से भी सम्पूर्ण मानव जाति को यह भारतीय पथ अपना लेना चाहिये। अन्य किसी पथ की इच्छा करना इससे अधिक शक्तिशाली और सम्मान्य नहीं हो सकता। आज मानव जाति का अस्तित्व ही खतरे में है। इसलिए सबसे सशक्त और सबसे सम्माननीय पथ की आवश्यकता है। श्रीरामकृष्ण, गाँधी और अशोक के उपदेशों को हृदयंगम एवं क्रियान्वित कर हम इस विभीषिका से बच सकते हैं। ये उपदेश सही हैं और इसलिये सही हैं कि ये तत्त्व की यथार्थ अनुभूति से निकले हैं।

भारत की प्राणशक्ति और जीवनधारा का मूल सूत्र है – आध्यात्मिक ऐक्य बोध

आध्यात्मिकता का सन्देश ही विश्व मानवता के लिये भारत की चिरन्तन देन है और यह सन्देश मानव के आध्यात्मिक स्वरूप तथा मानव जाति एवं मानव-सभ्यता की एकता एवं अखण्डता के बोध, उपलब्धि और जीवन में उसके क्रियान्वयन पर आधारित है। पिछली अनेक शताब्दियों से भारतवर्ष के आध्यात्मिक जीवन-आदर्श का जो ऐतिहासिक विकास चल रहा है, उसी में इस सन्देश की यथार्थता पूर्णत: अभिव्यक्त होती है। प्रत्येक राष्ट्र का अपना वैशिष्ट्य है, जिसे उसकी प्राणशक्ति, उसका अपना स्वभाव कहा जा सकता है। यह प्राणशक्ति ही उसके जीवन-मरण का मूल मन्त्र है। जब तक यह मूलमन्त्र सुरक्षित रहता है, तब तक वह राष्ट्र अपनी जीवन-शक्ति अक्षुण्ण रख सकता है तथा उत्तरोत्तर शक्ति संचय कर सकता है। जिस क्षण इस मूलमन्त्र का, इस प्राणशक्ति का विनाश होता है, उसी क्षण वह राष्ट्र भी नष्ट हो जाता है।

रोम सभ्यता का मूलमन्त्र था, उसकी राजशक्ति। इसीलिये रोम-साम्राज्य के पतन के साथ ही रोम-सभ्यता का भी विनाश हो गया। पृथ्वी में कितने राज्यों को हड़पने के लिए कितना नरसंहार हुआ, ऐसी कहानियों से रोम, मिस्र और असीरिया का इतिहास भरा पड़ा है। सत्ता और धन की लोलुपता के कारण समाज में जो पैशाचिकता और दुर्दशा होती है, उसी के भार से ये सभ्यताएँ लुप्त हो गईं। परन्तु भारतीय इतिहास का सर्वेक्षण करने पर हम पाते हैं कि उसकी जीवन-धारा चिरकाल से ही आध्यात्मिक रही है। यह कभी भी दुन्दुभिनाद, रणवाद्य या सैन्य अभियान के द्वारा सम्पन्न नहीं की जा सकती। अत: स्वाभावत: ही भारत का प्रभाव विनम्र है। यह प्रभाव ओस-पात के समान चुपचाप लोक चक्षु से परे विश्व भर में सर्वत्र फैला है। इस प्रभाव के बारे में सभी लोग भले प्रत्यक्ष रूप से न जानते हों, तथापि इसके फलस्वरूप पृथ्वी के सुन्दरतम पुष्प प्रस्फुटित हुए हैं। इस प्रकार युग-युग में भारत एक आध्यात्मिक और सांस्कृतिक भूमिका का निर्वाह करता रहा है। मानव के आध्यात्मिक पुनरुत्थान तथा जगत में वास्तविक सभ्यता के विकास के लिए भारत सदा से ही समर्पित रहा है।

भारतीय जीवन का केन्द्र है धर्म। यह धर्म वस्तुत: मानव के यथार्थ स्वरूप का विकास है और मानव का स्वरूप है शुद्ध चेतना, मानवसत्ता में निहित विश्वचेतना। यह विश्वचेतना ही मानव की प्रकृत आत्मा है, उसकी अन्तर्निहित सत्ता है। अत: जिस प्रकार बाह्य प्रकृति का सारा जीवन ही अन्तर्निहित सुप्त सत्ता की अभिव्यक्ति है, उसी प्रकार यह विश्वचेतना भी विभिन्न मानवों और राष्ट्रों से विभिन्न कालों और अवस्थाओं में तरह-तरह के आचार-व्यवहार और जीवनचर्या के माध्यम से अपने आपको अभिव्यक्त करती है। मानव-मानव के बीच, समाज-समाज के बीच और राष्ट्र-राष्ट्र के बीच जो भेद दिखाई पड़ता है, वह स्वरूपगत नहीं है, वरन् मात्र अभिव्यक्ति की भिन्नता के कारण है। सभी मनुष्यों की आत्मा एक और अखण्ड है तथा वह समस्त भिन्न-भिन्न अभिव्यक्तियों की आधारभूत सत्ता है।

मानव में निहित यह विश्व चेतना ही भारतात्मा की मूल सत्ता है। भारत जो अब तक जीवित है, इसका कारण यह है कि वह कभी भी इस आध्यात्मिक ऐक्य-चेतना की नींव से डिगा नहीं। यही कारण है कि यद्यपि पृथ्वी की अन्य प्राचीन सभ्यताओं का लोप हो चुका है, तो भी बारम्बार विदेशी शत्रुओं के आक्रमण के बावजूद भारत नष्ट नहीं हुआ। जब कभी भारत की इस प्राणशक्ति, धर्म के मूल सत्य में ह्रास या विकृति आयी है, तो राष्ट्रीय जीवन अधोगामी बना है तथा इसके कारण राष्ट्र विनाश की ओर बढ़ा है। दूसरी ओर यथार्थ धर्म के पुनरुज्जीवन के साथ-ही-साथ भारत पुन: सिर उठा कर खड़ा हुआ है तथा समस्त बाधा-विघ्नों को पार कर अपनी महिमा में प्रतिष्ठित हो गया है।

यही कारण है, जिस पद्धति की सहायता से अन्य राष्ट्रों के इतिहास का अनुशीलन किया जाता है, भारतीय इतिहास के अनुशीलन की पद्धति का उससे भिन्न होना स्वाभविक है। भारतीय इतिहास में राष्ट्रीय जीवन का रथ-चक्र उत्थान-पतन के जिस ऊबड़-खाबड़ पथ पर चलता रहा है, उस पर राजनीतिक इतिहास में प्रचलित कार्य-कारण सम्बन्ध के दृष्टिकोण से विचार न कर, धर्म के उत्थान-पतन की दृष्टि से विचार करना होगा। भारतीय इतिहास का मूल्यांकन करने के लिए धर्म के उत्थान-पतन के साथ राष्ट्रीय जीवन के उत्थान-पतन का कार्य-कारण-सम्बन्ध दिखाना होगा।

अत: आज भारत को अत्यन्त गम्भीरतापूवर्क अपनी राष्ट्रीय समस्याओं पर विचार करना होगा और यह कार्य उसे अतीत के इतिहास को ध्यान में रखकर, इतिहास की शिक्षा को हृदय से स्वीकार कर तथा तदनुसार पथ पर चलकर करना होगा। आज भारत के लिए अपनी विशिष्ट प्राणशक्ति – आध्यात्मिक एकता का पुनरुद्धार करना अत्यन्त आवश्यक हो गया है। इस पुनरुद्धार के लिये भारत अपने वास्तविक आत्मा की रक्षा तथा राष्ट्र को भावी ध्वंस से बचाने में सक्षम हो सकेगा। यह नि:संदेह कहा जा सकता है कि एकमात्र आध्यात्मिक एकता का बोध ही भारतवर्ष को राष्ट्रीय एकता स्थापित करने में समर्थ करेगा तथा उसे अपनी जीवनव्यापी साधना के पथ पर अग्रसर होने में अर्थात् मानव-जाति का आध्यात्मिक पुनरुज्जीवन करने में सक्षम बनायेगा।

भारत की राष्ट्रीय व्याधि का मूल है – अपने आध्यात्मिक आदर्श के प्रति चेतना का अभाव

स्वदेशवासियों तथा साथ ही विश्ववासियों को आध्यात्मिक सत्य के स्वरूप का परिचय देना वर्तमान में

भारत का ही दायित्व है, किन्तु अपने इस उत्तरदायित्व तथा विश्व के राष्ट्रों के प्रति अपनी इस भूमिका का पालन करने में भारत पूर्णत: उदासीन है। इस उदासीनता का कारण यह है कि उसका आध्यात्मिक आदर्श दीर्घ काल से पूर्णत: विस्मृति के गर्त में समा गया है। इस आध्यात्मिक आदर्श को उपयोग में न लाने के कारण उसकी राष्ट्रीय देह में भी आज अनेक प्रकार के भीषण रोगों के लक्षण दीख रहे हैं। इसलिये अब भारत के आध्यात्मिक आदर्श का शीघ्र पुनरुज्जीवन तथा भारत के राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक क्षेत्रों में उसका प्रत्यक्ष व्यवहार अनिवार्य हो उठा है। यह आध्यात्मिक आदर्श ही भारत को यथार्थ एकता प्रदान कर सकता है, राष्ट्रीय रोगों से उसे मुक्त कर सकता है, अलगाववाद और ध्वंसवाद से उसे बचा सकता है, समस्याओं के दूर करने के विविध प्रकार के व्यर्थ प्रयासों के हाथ से उसकी रक्षा कर सकता है तथा उसे हर क्षेत्र में राष्ट्रीय भित्ति पर पुन: प्रतिष्ठित कर सकता है। भारत के विभिन्न क्षेत्रों में आज जो तरह-तरह की समस्याएँ पैदा हो रही हैं, उन्हें समाप्त करने के लिये यह मूल कर्त्तव्य आज अपरिहार्य हो उठा है।

आध्यत्मिक एकता का अज्ञान ही साम्प्रदायिकता का मूल है

भारत की आध्यात्मिक एकता के बारे में पूर्ण विस्मृति और अज्ञान का एक भयानक फल साम्प्रदायिकता के रूप में प्रगट हुआ। साम्प्रदायिकता तथा अन्य जो मतवाद मानव-मानव में, वर्ग-वर्ग में, राष्ट्र-राष्ट्र में और धर्म-धर्म में विरोध तथा विखंडन पैदा करते हैं, इन सबकी उत्पत्ति आध्यात्मिक ऐक्य एवं सम्पूर्ण मानव-एकता की अज्ञानता के कारण होती है। इसलिये हमे समाज में आदर्शभ्रष्टता दिखाई पड़ती है। उससे विशृंखलता, हिंसा, संघर्ष, उद्वेग तथा एकता विरोधी आत्मघाती प्रवृत्तियाँ दृष्टिगोचर होती हैं। इसके साथ ही फिर धीरे-धीरे अलगावादी आन्दोलन का उद्भव होता है, जो अब भारत के राष्ट्रीय जीवन में सिर उठाने लगा है। भारत की राष्ट्रीय व्याधि के रूप में भ्रष्टाचार और अनैतिकता की यह बाह्य अभिव्यक्ति मूलत: भारत की आध्यात्मिक एकता के आदर्श की उपेक्षा का परिणाम है। साम्प्रदायिकता का विष-कीट आज भारत के राजनैतिक जीव-कोष में प्रविष्ट होकर उसकी जीवनीशक्ति को क्षीण कर रहा है और यही आज की भारत की सबसे बड़ी राष्ट्रीय व्याधि है। हमने पहले ही कहा है, आध्यात्मिक एकता में जो शाश्वत सत्य निहित है, उसके प्रति जागरुकता में, उसे स्वीकार तथा आत्मसात् करने में ही भारत की सारी समस्या, जटिलता एवं व्याधि को दूर करने का तथा आरोग्य लाभ करने का उपाय निहित है। राष्ट्रीय देह से सारे दोष एवं उनकी बाह्य अभिव्यक्तियाँ उसी दिन दूर होंगी, जब भारत की प्राणशक्ति – यह आध्यात्मिक एकता – जाग्रत होगी तथा जिस दिन उपयुक्त शिक्षा-प्रणाली की सहायता से राष्ट्रीय नींव पर प्रतिष्ठित संस्कृति, समाज एवं आर्थिक क्षेत्र को नयी दिशा देते हुए भारत के राष्ट्रीय जीवन के सभी अंगों में इस आध्यात्मिक प्राणशक्ति का संचार किया जायेगा। अत: सर्वप्रथम आवश्यकता है भारत की आध्यात्मिक एकता की सूचक उसकी इस प्राणशक्ति को जगाना। इस आध्यात्मिक एकता को ही धर्म कहा गया है।

धर्म क्या है?

जिस विद्या से मनुष्य के स्वरूप का ज्ञान होता है, उसको धर्म कहते हैं। धर्म मनुष्य के वास्तविक स्वरूप के बोध, उपलब्धि और अभिव्यक्ति को कहते हैं। शुद्ध चैतन्य, शुद्ध सत्ता और शुद्ध आनन्द ही मनुष्य का यथार्थ स्वरूप है। यह स्वरूप उसकी दिव्य सत्ता है और यह सर्वव्यापी है। अत: प्रत्येक जीव की आत्मा वही एक स्वयं प्रकाश सर्वव्यापी चेतना ही है, अज्ञान-मेघ से आवृत सूर्य के समान है। एक जीव से दूसरे जीव का भेद मात्र अज्ञान-मेघ के विविध स्तरों में घनत्व के कारण है। यह भेद स्वभावगत नहीं परिणामगत है, विकास और उन्नति के विभिन्न स्तरों के माध्यम से यह तारतम्य अभिव्यक्त होता है। जाने या अनजाने यही चिरन्तन सत्य सभी धर्मों की नींव के रूप में विद्यमान है। मानवजाति के भौतिक, बौद्धिक और आध्यात्मिक प्रत्येक स्तर की प्रगति की पूरी अभिव्यक्ति की व्याख्या इसी चिरन्तन सत्य में प्राप्त होती है, एक ही विश्वचेतना विभिन्न स्तरों में प्रकाशित हो रही है। अत: धर्म मानव-जाति एवं मानव सभ्यता की आध्यात्मिकता एकता की उपलब्धि को कहते हैं।

धर्म एक, उसकी अभिव्यक्तियाँ अनेक

हमने पहले ही कहा है कि मनुष्य का वास्तविक स्वरूप, उसकी दिव्य सत्ता है, उसमें निहित विश्वचेतना है, उसी के बोध, उपलब्धि और अभिव्यक्ति को धर्म कहते हैं। यही

विश्वचेतना अनन्त दिशाओं में, अनन्त रूपों में, अनन्त माध्यमों से अनन्त भावों में प्रकाशित हो रही है। वस्तुत: तत्त्व की दृष्टि से धर्म एक है, परन्तु उसके रूप और अभिव्यक्तियाँ अनेक हैं। जैसे एक ही गिरगिट विभिन्न समयों में विभिन्न रंग का होता है – कभी लाल, कभी हरा, कभी पीला, कभी नीला, फिर कभी बिना रंग का हो जाता है, वैसे ही विश्वचेतना और उसकी विभिन्न अभिव्यक्तियाँ वस्तुत: एक ही सत्ता के विभिन्न रूप हैं। मनुष्य का मन इस सत्ता की उपलब्धि विभिन्न अवसरों पर, विभिन्न स्तरों में, विभिन्न पहलुओं से, विभिन्न दृष्टियों से करता है। यह सोचना गलत होगा कि केवल एक विशेष रूप या माध्यम या प्रकार के द्वारा ही आत्मोपलब्धि होती है। वस्तुत: मनुष्य का जीवन जितने भी रूपों के माध्यम से अभिव्यक्त होता है, वे सभी आत्मोपलब्धि के लिये समान रूप से उपयोगी पथ हैं। ये विभिन्न पक्ष एक वृत्त की त्रिज्याओं के समान हैं। जितनी त्रिज्याएँ उतने ही पथ। जितने मत, उतने ही पथ। सभी पथ-केन्द्र की ओर ही ले जाते हैं। यह केन्द्र ही परमसत्ता है, मनुष्य में अन्तर्निहित विश्वचेतना है। इस केन्द्र में जहाँ पर सभी त्रिज्याएँ मिल जाती हैं, वहीं सभी विभेद समाप्त हो जाते हैं। परन्तु जब तक हम इस केन्द्र तक नहीं पहुँच जाते, तब तक विभिन्नता रहेगी ही। विभिन्न लोग अपनी-अपनी मनोवृत्ति के अनुसार भिन्न-भिन्न पथों का अवलम्बन करते हैं। एक व्यक्ति एक पथ पर चलता है, तो दूसरा दूसरे पथ पर। यदि सभी लोग अपने-अपने पथ पर अग्रसर हों, तो निश्चय ही वे केन्द्र तक पहुँचेंगे। यही धर्म का सार तत्त्व है। मतवाद, आचार-व्यवहार, शास्त्र-ग्रन्थ, मन्दिर और इस प्रकार की अन्य सब बातें गौण अंग-प्रत्यंग मात्र हैं।

जब हम धर्म को विभिन्न नाम देकर अनेक कहते हैं, तो हम धर्म की अभिव्यक्ति के विभिन्न रूपों और माध्यमों को ध्यान में रखकर ही यह बात कहते हैं। ये भिन्न-भिन्न रूप सब कुछ या प्रमुख नहीं है, ये तो एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति में, एक दल से दूसरे दल में तथा एक सम्प्रदाय से दूसरे सम्प्रदाय में बदलते रहते हैं। तथापि यह बात माननी होगी कि जिस प्रकार धान के भीतर के दाने की रक्षा, पोषण और वृद्धि के लिए भूसी रूपी आवरण की आवश्कता होती है, उसी प्रकार मनुष्यों की भिन्न-भिन्न मानसिक संरचना के अनुसार धर्मभाव की रक्षा, पोषण और वृद्धि के लिए विभिन्न मतवादों का अस्तित्व अवश्यम्भावी और अपरिहार्य है। क्योंकि मनुष्य के स्वभाव-वैचित्र्य और उसके मानसिक गठन की विभिन्नता के कारण इन भिन्न-भिन्न मतवादों का उद्‌गम हुआ है। युग-युग से भारत के समक्ष यही चिरन्तन सत्य रहा है – संस्कार, रुचि और मानसिकता में भेद होने के कारण ही भिन्न-भिन्न व्यक्ति अपनी दिव्यसत्ता की उपलब्धि रूपी एक ही लक्ष्य तक पहुँचने के लिये विभिन्न पथों का आश्रय लेते हैं। अतएव आत्माभिव्यक्ति की दृष्टि से धर्ममतों का अनेकत्व मनुष्य के स्वभाव में ही निहित है। जिस दिन पृथ्वी के हर मनुष्य के लिए एक अलग धर्म का विकास होगा, उसी दिन इस सत्य को परिपूर्णता और सार्थकता प्राप्त होगी, साथ ही इस आध्यात्मिक सत्य को भी कि एकत्व के भीतर बहुत्व भी समाहित है, केवल भाव की दृष्टि से ही नहीं, वरन् अभिव्यक्ति की दृष्टि से भी। प्रकाश की अनन्त भंगिमाएँ प्रत्येक व्यक्ति को उसके अपने भीतर की सुप्त ईश्वरीय सत्ता को अपने विशिष्ट माध्यम से व्यक्त करने में सहायता करती हैं, यह सत्य ही अध्यात्म विज्ञान की सर्वश्रेष्ठ खोज है। इस सत्य का अनुसरण करके ही मानवता विरोध के दल-दल से निकल कर उस बाधाहीन मुक्ति के पथ पर आगे बढ़ सकती है, जो मानव-जाति एवं मानव-सभ्यता का चरम अभीष्ट है। **(क्रमश:)**

यह जान लो कि ईश्वर की कृपा हुए बिना, माया के द्वार छोड़े बिना किसी को आत्मज्ञान नहीं होता, दुख-कष्टों का अन्त नहीं होता। सुना नही, दुर्गासप्तशती में कहा है, ''*सैषा प्रसन्ना वरदा नृणां भवति मुक्तये*।'' जब तक जगज्जननी महामाया पथ के विघ्नों को हटा न दे तब तक कुछ नहीं होता। ज्योंहि महामाया की कृपा होती है, त्योंहि जीव को ईश्वर-दर्शन होते हैं और वह समस्त दुख-कष्टों के हाथ से छुटकारा पा जाता है , नहीं तो लाख विचार करो, कुछ भी नहीं होता। ऐसा कहते हैं कि अजवायन का एक दाना चावल के सौ दानों को पचा डालता है। पर जब पेट की बीमारी हो जाती है, तब सौ अजवायन के दानें भी एक चावल के दाने को हजम नहीं करा सकते। यह भी ऐसा ही जानना।

– श्रीरामकृष्ण परमहंस

आध्यात्मिक जिज्ञासा (९)

स्वामी भूतेशानन्द

(ईश्वरप्राप्ति के लिये साधक साधना करते हैं, किन्तु ऐसी बहुत सी बातें हैं, जो साधक की साधना में बाधा बनकर उपस्थित होती हैं। साधक के मन में बहुत से संशयों का उद्भव होता है और वे संशय उसे लक्ष्य पथ में भ्रान्ति उत्पन्न कर अभीष्ट पथ में अग्रसर होने से रोकते हैं। इन सबका सटीक और सरल समाधान रामकृष्ण संघ के द्वादश संघाध्यक्ष पूज्यपाद स्वामी भूतेशानन्द जी महाराज ने दिया है। इसका संकलन स्वामी ऋतानन्द जी ने किया है, जिसे हम 'विवेक ज्योति' के पाठकों हेतु प्रकाशित कर रहे हैं। – सं.)

प्रश्न – गुरु को कैसे पहचानें? महाराज थोड़ा विस्तार से कहिए।

महाराज – गुरु का प्रमुख गुण है, वे शास्त्रज्ञ और ब्रह्म निष्ठ होंगे। उनका आचरण शास्त्रानुकुल होगा। वे नि:स्वार्थ भाव से शिष्य को करुणापूर्वक अज्ञान समुद्र से मुक्ति के मार्ग का उपदेश करेंगे। 'श्रोत्रिय' और 'ब्रह्मनिष्ठ', दो बातें गुरु के बारे में कहीं गयी हैं। शास्त्र-ज्ञान नहीं रहने से वे वास्तविक तत्त्व को नहीं समझा सकेंगे और ब्रह्मनिष्ठ नहीं होने से संशय दूर नहीं होता। व्यावहारिक जीवन के गुरु और आध्यात्मिक जीवन के गुरु में यही अन्तर है। गुरु कैसे होंगे? 'श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठं' – शास्त्रज्ञ और ब्रह्मस्वरूप में प्रतिष्ठित होंगे। शिष्य गुरु के पास कैसे जायेगा? 'समित्पाणि;' अर्थात् गुरु के सेवा के योग्य वस्तु लेकर सेवाभाव से जायेगा। पुराण और उपनिषद में विभिन्न स्थानों पर उल्लेख है, किसी विद्या को ठीक से जानने के लिए,

उस विद्या के अभिज्ञ व्यक्ति के शरणागत होना पड़ता है। विशेषकर अध्यात्म-विद्या के सम्बन्ध में निर्देश है कि जो लोग संसार-दावानल से तप्त हैं, संसार के दुख-ताप से जर्जर हैं, वे लोग दुख-निवृत्ति के लिए गुरु के पास जाकर श्रद्धापूर्वक उपदेश के लिये प्रार्थना करेंगे –"कैसे इस भव-सागर से पार होऊँगा, मेरा सच्चा आश्रय कहाँ है, कौन-सी साधना करूँगा, ये सब मैं कुछ भी नहीं जानता। हे प्रभो ! कृपा कर आप हमारी रक्षा कीजिए, संसार-दुख से निवृत्ति हेतु मुझे मार्ग बता दीजिए।" जैसे सच्चे गुरु में कुछ विशेष गुणों की आवश्यकता है, वैसे ही शिष्य में, अर्थात् जो गुरु से उपदेश और निर्देश चाहता है, उसमें भी कुछ विशेष गुण होने चाहिए। तभी गुरु का निर्देश फलदायक होगा। वे गुण हैं – पवित्रता, गुरु के प्रति श्रद्धा और उनकी वाणी में विश्वास।

प्रश्न – श्रीरामकृष्ण संघ में गुरु-परम्परा की क्या विशेषता है, थोड़ा बताइये न महाराज !

उत्तर – श्रीरामकृष्ण के पार्षदगण सभी श्रीरामकृष्ण को ही एक आधार में गुरु और इष्ट कहते थे। उसी के अनुसार उनकी परम्परा के 'गुरु' वृन्द कोई भी अपने को गुरु नहीं मानते हैं। वे लोग अपने को श्रीरामकृष्ण की साधना-परम्परा का वाहक मानते हैं। 'ठाकुर' ही गुरु हैं। किन्तु पहले दीक्षागुरु का अपने भीतर चिन्तन करना पड़ता है और दूसरे चरण में दीक्षागुरु को इष्ट में विलीन कर दिया जाता है। ध्यान के लिये यही सहज और स्वाभाविक प्रणाली है। इसलिए दीक्षागुरु का पहले थोड़ा ध्यान कर बाद में उन्हें इष्ट में विलीन कर इष्ट का ध्यान किया जाता है। 'सच्चिदानन्द' ही गुरु हैं।

वे सर्वत्र विद्यमान हैं। वे सर्वदा सबके अन्दर विराजमान हैं। वे ही सच्चे गुरु हैं। उनका हृदय में ध्यान करना होगा। दीक्षागुरु मार्ग हैं। वे शिष्य को उसी मार्ग से परम गुरु के पास ले जायेंगे। उनके पास पहुँचना ही शिष्य का परम लक्ष्य है।

श्रीरामकृष्ण कहते थे – "सबके गुरु वे एक सच्चिदानन्द ही हैं। किन्तु चूँकि हम उन्हें साक्षात् ग्रहण नहीं कर पा रहे हैं, इसलिए साधना के सहायक रूप में किसी मानव-गुरु का आश्रय लेना पड़ता है। मानव गुरु में ईश्वर-भाव रखना चाहिए। यही शास्त्र की आज्ञा है। अर्थात् मानव-गुरु उसी ईश्वर-गुरु के प्रतीक हैं। इसलिए हम लोग जब भी कहते

हैं, गुरु, ईश्वर एक हैं या गुरु शिष्य के साथ-साथ रहेंगे, तो इस शास्त्रीय, दृष्टिकोण से ही कहते हैं। मानव-गुरु अपनी क्षमतानुसार शिष्य को परम लक्ष्य अर्थात् ईश्वरानुभूति तक पहुँचाने में सहायता करते हैं। किन्तु सच्चिदानन्द-गुरु साधक को उसकी स्वरूपप्राप्ति के पथ पर अग्रसर करते हैं और वे ही साधक के साधना-मार्ग में सदा साथ रहते हैं, वे ही मार्ग-निर्देशक और परम लक्ष्य हैं।

प्रश्न – महाराज, शिष्य में किस-किस योग्यता की आवश्यकता है?

उत्तर – अभीप्सित अभीष्ट आदर्श तक पहुँचने के लिए उसमें अत्यन्त रुचि होनी चाहिए। जिज्ञासा शान्त करने के लिये दीक्षा लेना, ऐसा नहीं होना चाहिए। गुरु के निर्देश, उपदेश में उसकी परम निष्ठा होनी चाहिए। शिष्य का चरित्र शुद्ध होगा। गुरु और शिष्य दोनों की चरित्र-शुद्धि पर समान बल दिया गया है। शिष्य को विनम्र होना होगा, उद्दण्ड नहीं। अपार श्रद्धा नहीं होने से गुरु का आश्रय लेना सम्भव नहीं है। किन्तु गुरु वरण करने के पहले उनकी यथाशक्ति परीक्षा कर लेने के बाद गुरु चरणों को स्वीकार करना शिष्य के लिए अत्यन्त आवश्यक है। गुरु के ज्ञान-भण्डार को ग्रहण करने में शिष्य की नम्रता उसे योग्य आधार में परिणत करती है। विनय, निष्ठा, पवित्रता और सेवा की भावना नहीं रहने से गुरु का संग करने से कोई लाभ नहीं होता।

(७)

प्रश्न – महाराज, एक प्रश्न की चर्चा में हमलोगों ने कहा था – मैं कौन हूँ, अन्वेषण करने पर हमलोगों को संशय होता है कि क्या 'मैं शरीर हूँ, मन हूँ या अन्य कुछ हूँ? अपने स्वरूप के अस्तित्व के सम्बन्ध में कोई संशय नहीं हो रहा है। हमलोग उसे नहीं कह रहे हैं।

महाराज – किन्तु अस्तित्व तो एक बात हुई।

– वाणी के द्वारा ही तो हम लोग कुछ कहना चाहते हैं। जब हमलोग कोई वस्तु समझना चाहते हैं, तो शब्दों के द्वारा ही तो समझने का प्रयास करते हैं।

महाराज – सुनो, सुनो। पाश्चात्य दार्शनिक देकार्ते ने कहा है – "Cogito ergo sum", उन्होंने कहा – मैं सब संशय करूँगा। सब है कि नहीं, प्रमाण नहीं है। अच्छा ठीक है। किन्तु मैं जो तर्क कर रहा हूँ, मैं तो हूँ नहीं, तो तर्क कैसे कर रहा हूँ ? Cogito ergo sum मैं संशय कर रहा हूँ, इसलिये मैं हूँ।

– यह मैं हूँ ही क्या आत्मा या ब्रह्म है?

महाराज – संशयकर्ता हैं, इस सम्बन्ध में संशय नहीं किया जायेगा। तुम हो या नहीं, यदि इस सम्बन्ध में तुम्हें संशय हो, तो तुम्हारा अस्तित्व ही नहीं हुआ। क्योंकि तुम स्वत:सिद्ध, स्वयं सिद्ध हो। तुम्ही ब्रह्म हो।

– महाराज, हम लोग कहना चाहते हैं कि वे कौन हैं? क्या वे शरीर हैं?

महाराज – यही तो अन्वेषण करने योग्य है। यही जानने योग्य है, ज्ञातव्य है। तुम अपने को स्वयं ही नहीं पकड़ सकते। कुत्ते की पूँछ के समान। कुत्ता अपनी पूँछ को नहीं पकड़ सकता। वह जब भी अपनी पूँछ को पकड़ने जाता है, वह और पीछे चली जाती है। इसी प्रकार तुम लोगों के ब्रह्म का अन्वेषण कुत्ते की पूँछ खोजने जैसा है।

– तो क्या किसी दिन (ब्रह्म) पकड़ में नहीं आयेगा?

महाराज – किसी दिन पकड़ में नहीं आयेगा। क्योंकि जो पकड़ने जा रहा है, उसके भीतर ही वे विद्यमान हैं। पकड़ेगा कैसे?

– महाराज, जो वस्तु ग्राह्य न हो, वह वस्तु ही नहीं है। क्योंकि संसार में हम उसी वस्तु को मानते हैं, जिस वस्तु को हम पकड़ सकें, स्पर्श कर सकें।

महाराज – नहीं, जिस वस्तु को तुम आँखों से देख सकते हो, कानों से सुन सकते हो, नाक से सूँघ सकते हो, पंचेन्द्रिय ग्राह्य संसार को तुमलोग सत्य मानते हो? किन्तु यदि कोई वस्तु पंचेन्द्रियों के अतीत हो, तो उसे क्या कहोगे?

– उसे कहेंगे, अनुमानगम्य। अनुमान के द्वारा बोधगम्य कहेंगे। **(क्रमश:)**

आवरण-पृष्ठ के सम्बन्ध में

इस चित्रण में स्वामी अखण्डानन्द जी महाराज एवं उनके सेवाकार्यों को दिखाने का प्रयास किया गया है। स्वामी अखण्डानन्द जी महाराज भगवान श्रीरामकृष्ण देव के अन्तरंग शिष्य एवं स्वामी विवेकानन्द के गुरुभाई थे। स्वामी विवेकानन्द द्वारा अनुमोदित 'शिवभाव से जीवसेवा' के आदर्श को चरितार्थ करने में वे अग्रणी थे। उनका सम्पूर्ण जीवन त्याग और सेवा का ज्वलन्त उदाहरण था। सितम्बर माह में उनकी जन्मतिथि के उपलक्ष्य में यह आवरण-पृष्ठ उनको निवेदित है।

मनुष्य निर्माणकारी शिक्षा

स्वामी ब्रह्मेशानन्द

रामकृष्ण अद्वैत आश्रम, वाराणसी

स्वामी विवेकानन्द से एक बार किसी ने पूछा था 'आप भारत को स्वाधीन करने का प्रयत्न क्यों नहीं करते?' स्वामीजी ने उत्तर दिया था, ''मैं कल राष्ट्र को स्वाधीनता दिला सकता हूँ, लेकिन उसकी रक्षा करने वाले मनुष्य कहाँ हैं?''

आज स्वाधीनता के ६८ वर्ष के बाद तथा स्वामी विवेकानन्द के कथन के लगभग ११६ वर्ष बाद हम ऐसी समस्या का सामना कर रहे हैं जिसकी ओर स्वामीजी ने इंगित किया था। इस सन्दर्भ में यदि स्वामीजी के सन्देश एवं जीवनादर्श को कुछ ही शब्दों में व्यक्त करने का प्रयत्न करें, तो वह है – 'मनुष्य-निर्माण करना' और इसका उपाय है, शिक्षा। स्वामीजी ने कहा था – ''हम मनुष्य बनाने वाला धर्म चाहते हैं, हम मनुष्य बनाने वाले सिद्धान्त चाहते हैं। हम सर्वत्र, सभी क्षेत्रों में मनुष्य बनाने वाली शिक्षा चाहते हैं।''

शिक्षा मानव की उन्नति एवं विकास का एक महत्त्वपूर्ण उपादान है। एक श्रेष्ठ शिक्षा-पद्धति पर ही राष्ट्र के भावी नागरिकों का निर्माण तथा उसका भविष्य निर्भर करता है। लेकिन दुर्भाग्य है कि हमारे नेताओं तथा राष्ट्रीय योजना बनाने वालों ने इसी की सबसे अधिक उपेक्षा की है। दूसरी ओर, स्वामी विवेकानन्द ने अपने सन्देश में शिक्षा को सबसे अधिक महत्त्व प्रदान किया है। राष्ट्रीय पुनर्जागरण का विषय हो या सामाजिक सुधार का, नारी-जाति के उत्थान का विषय हो या जन-साधारण की समस्याओं का, व्यक्तिगत विकास का प्रश्न हो या सामूहिक विकास का, स्वामीजी जिस एक उपाय पर बार-बार बल देते हैं, वह है, शिक्षा।

शिक्षा की परिभाषा

लेकिन शिक्षा है क्या? स्वामी विवेकानन्द के अनुसार ''मनुष्य की अन्तर्निहित पूर्णता को अभिव्यक्त करना ही शिक्षा है।'' यह परिभाषा स्वामीजी के एक दूसरे महत्त्वपूर्ण दार्शनिक सिद्धान्त पर आधारित है, जिसके अनुसार प्रत्येक आत्मा मूलत: ब्रह्मस्वरूप है तथा समग्र ज्ञान, शक्ति एवं आनन्द प्रत्येक प्राणी, प्रत्येक जीव में पूर्णरूप से अन्तर्निहित है। मनुष्य जो कुछ जानता है, वह वस्तुत: आविष्कार मात्र करता है, अनावृत करता है। एक मानव का दूसरे मानव से अन्तर, यही नहीं, एक छोटे से अमीबा और बुद्ध में अन्तर केवल अन्तर्निहित ज्ञान की अभिव्यक्ति का अन्तर है। अमीबा में वही ज्ञान आवृत, प्रसुप्त एवं सबसे कम अभिव्यक्त है, जबकि वह बुद्ध में पूर्ण रूप से अभिव्यक्ति है। शिक्षा का कार्य अन्तर्निहित ज्ञान के आवरणों को दूर करना मात्र है।

आत्मविश्वास का संचार

उपर्युक्त सिद्धान्त का व्यावहारिक पक्ष अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। यह सभी को आत्मनिर्भर होना सिखाता है। जब समस्त ज्ञान मुझमें ही पहले से विद्यमान है, तब मैं अपने को दुर्बल या अज्ञानी क्यों समझूँ? अत: भारतीय युवा-वर्ग को स्वामी विवेकानन्द से जो पहला सबक सीखना है, वह है आत्मविश्वास तथा अपने मस्तिष्क में किसी भी प्रकार के दुर्बल करने वाले विचार को प्रवेश न करने देना। स्वामी विवेकानन्द कहते हैं – ''यूरोप के अनेक नगरों की यात्रा करते समय वहाँ के गरीबों तक के लिए अमन-चैन और शिक्षा की सुविधाओं को देखकर मेरे मन में अपने देश के गरीबों की दशा का दृश्य खिंच जाता था। ऐसा अन्तर क्यों हुआ? उत्तर मिला – शिक्षा। शिक्षा से आत्मविश्वास आता है, और आत्मविश्वास से अन्तर्निहित ब्रह्म-भाव जाग उठता है। भारतीय युवक-युवतियों को अपने-आप में यह विश्वास रखना है कि वे सब कुछ कर सकते हैं। वे स्वयं अपने भाग्य के निर्माता हैं। वे चाहें तो ओलम्पिक-विजयी श्रेष्ठ खिलाड़ी बन सकते हैं, प्रयत्न करने पर महान दार्शनिक अथवा विश्वविख्यात वैज्ञानिक, यही नहीं, पुरातन ऋषियों के समान ब्रह्मज्ञ ऋषि भी बन सकते हैं।'

अत: स्वामी विवेकानन्द की शिक्षा-प्रणाली का प्रथम सोपान सकारात्मक शिक्षा प्रदान करना है, जो विद्यार्थी को स्वयं में तथा उनके भीतर प्रसुप्त महान शक्ति एवं ज्ञान पूर्णता तथा अपने पूर्व पुरुषों, अपनी संस्कृति एवं अपने राष्ट्र की गौरवशाली परम्पराओं में विश्वास करना सिखाए।

प्रकृति का नियमन

प्रत्येक में अन्तर्निहित पूर्णत्व सदा अभिव्यक्त होने के लिए प्रयत्नशील है, लेकिन इसमें उसे प्रकृति की शक्तियों का सामना करना पड़ता है, जो इसे रोकने में सतत प्रयत्नशील रहती हैं। स्वामी विवेकानन्द के अनुसार मानव तभी तक मानव है, जब तक वह प्रकृति पर विजय प्राप्त करने के लिए संघर्ष करता है। यह प्रकृति दो प्रकार की है – अन्त:प्रकृति तथा बाह्य प्रकृति। बाह्य प्रकृति पर विजय प्राप्त करने में गौरव है। लेकिन अन्त:प्रकृति पर विजय प्राप्त करना उससे भी अधिक गौरव की बात है। ग्रह-नक्षत्रों को नियंत्रित करने वाले नियमों को जानना अच्छा है; लेकिन मानव को वासनाओं, भावनाओं एवं इच्छाओं को परिचालित करने वाले नियमों को जानना अनन्त गुना अधिक गौरवपूर्ण है। भौतिकशास्त्र, रसायनशास्त्र, वनस्पतिशास्त्र, खगोल-विज्ञान आदि भौतिक-विज्ञान की विभिन्न शाखाओं की आधुनिक शिक्षा बाह्य प्रकृति के नियमों का ज्ञान प्रदान करती है, जिनकी सहायता से प्रकृति की इन बाह्य शक्तियों का नियमन तथा सदुपयोग किया जा सकता है। उदाहरणस्वरूप, विद्युत-विज्ञान के ज्ञान द्वारा हम बिजली का उपयोग अपने घरों को आलोकित करने, पानी गरम करने तथा रेडियो बजाने में कर सकते हैं। बेतार (वायरलेस) के सिद्धान्त के द्वारा हम रेडियो का आविष्कार कर हजारों मील दूर की ध्वनि सुनने में समर्थ हुए हैं। वायुयान बनाकर हमने नभ पर तथा पनडुब्बियों द्वारा सागर पर विजय प्राप्त की है।

लेकिन आधुनिक शिक्षा मानव के मन के बारे में बहुत कम ज्ञान प्रदान करती है। यह ठीक है कि आधुनिक मनोविज्ञान मन के स्वरूप का कुछ ज्ञान अवश्य प्रदान करता है। लेकिन पाठ्यक्रम के किसी भी स्तर पर विद्यार्थी को अपने चंचल मन को एकाग्र करना, अपनी वासनाओं को नियंत्रित करना तथा अहंकार पर विजय प्राप्त करना नहीं सिखाया जाता। प्रबल भोग-वासनाओं, अहं-प्रेरित क्रियाकलापों एवं निरन्तर वर्धमान लोभ-वृत्ति को नियंत्रित करना बाह्य प्रकृति के नियमन से कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण है, जिसके अभाव में बाह्य प्रकृति की शक्तियों के स्वार्थपरक एवं मानवजाति के हित के विपरीत दुरुपयोग की सम्भावना रहेगी। स्वामी विवेकानन्द ने इसीलिए अन्त:प्रकृति के नियमन की शिक्षा पर अधिक बल दिया है।

शिक्षा कैसी हो

स्वामी विवेकानन्द के अनुसार, ''सभी प्रकार की शिक्षा और प्रशिक्षण का उद्देश्य मनुष्य-निर्माण होना चाहिए। जिस अभ्यास अथवा प्रशिक्षण से मनुष्य की इच्छाशक्ति का प्रवाह संयमित हो, फलदायी बन सके, उसी का नाम शिक्षा है। हम चाहते हैं, जीवन-निर्माणकारी, मनुष्य-निर्माणकारी, चरित्र-गठनकारी विचारों को आत्मसात् करना।''

वास्तविक 'मनुष्य' कौन है?

श्रीरामकृष्ण के अनुसार मनुष्य वह है, जिसे अपने आध्यात्मिक चैतन्य-स्वरूप का भान हो गया है। यह जानना कि हम देह-मन के संघातमात्र नहीं हैं, बल्कि जन्म-मरणरहित नित्य-शुद्ध-बुद्ध, सच्चिदानन्दस्वरूप आत्मा हैं – मनुष्यत्व का लक्षण है। यह पारमार्थिक सत्य भारतीय संस्कृति का पुरातन काल से आधार रहा है और समग्र मानव-निर्माणकारी भारतीय शिक्षा का यही केन्द्र होना चाहिए।

स्वामी विवेकानन्द ने एक आदर्श मनुष्य के गुणों का वर्णन विभिन्न अवसरों पर किया है। वे कहते हैं कि वास्तविक मनुष्य वह है, जो स्वयं शक्ति के समान शक्तिशाली होते हुए भी जिसका हृदय नारी के समान कोमल हो। उनमें अपने आस-पास के असंख्य नर-नारियों के दुखों का अनुभव करने की क्षमता होनी चाहिए और साथ ही उसे वज्र के समान कठोर भी होना चाहिए। एक श्रेष्ठ मानव में ये आपातत: विरोधी गुण होने चाहिए। स्वामी विवेकानन्द कहते हैं – ''महान आदर्शवाद के साथ ही व्यावहारिकता का अपने जीवन में समावेश करने का प्रयत्न करो। तुम्हें इस क्षण गहरे ध्यान में डूबने में समर्थ होना चाहिए और दूसरे ही क्षण खेतों में जाकर खेती करने की भी क्षमता होनी चाहिए। तुम्हें शास्त्रों के गूढ़ तत्त्वों की व्याख्या करने में समर्थ होना चाहिए और दूसरे ही क्षण खेत के उत्पादन को बाजार में बेच आने की क्षमता भी होनी चाहिए। आज हमारे देश को जिस चीज की आवश्यकता है, वह है लोहे की मांसपेशियाँ और फौलाद के स्नायु, दुर्दमनीय, प्रचण्ड इच्छाशक्ति जो सृष्टि के गुप्त तथ्यों और रहस्यों को भेद सके और जिस किसी उपाय से भी हो, अपने उद्देश्य की पूर्ति करने में समर्थ हो।''

संक्षेप में श्रेष्ठ मनुष्य वह है, जो अपने चैतन्य आत्मस्वरूप का ज्ञाता हो, जो शारीरिक एवं मानसिक दृष्टि

से सबल एवं स्वस्थ हो तथा जिसका हृदय, मस्तिष्क एवं कार्यक्षमता सन्तुलित एवं पूर्ण-विकसित हो।

मनुष्य-निर्माण की योजना

स्वस्थता एवं सबलता शरीर की सर्वप्रथम आवश्यकता है। इसे नियमित व्यायाम, पौष्टिक आहार एवं ब्रह्मचर्य द्वारा गढ़ा जा सकता है।

व्यक्तित्व के सभी पक्षों के सन्तुलित विकास के लिए उपयोगी प्रणाली को स्वामी विवेकानन्द ने 'चार योगों' की संज्ञा दी है। चित्तवृत्तियों के निरोध द्वारा मन को एकाग्र करने की विधि राजयोग कहलाती है। प्रत्येक व्यक्ति प्रतिदिन निर्धारित समय पर एक स्थिर आसन में बैठकर अपने मन को एकाग्र करने का अभ्यास कर सकता है। इससे मन की विक्षिप्त शक्तियाँ केन्द्रित होंगी, तथा इस संचित शक्ति का अन्य क्षेत्रों में उपयोग कर एक विद्यार्थी शीघ्र सफलता प्राप्त कर सकता है। विद्यार्थी की स्मरण-शक्ति इस अभ्यास से प्रखर होगी तथा वह पहले से कम प्रयास के द्वारा अपने विषयों को आयत्त कर सकेगा।

सामान्यत: हमारा मन उसकी रुचि के विषयों में आसानी से एकाग्र हो जाता है, लेकिन अन्य विषयों में उसे एकाग्र करना कठिन होता है। एक विद्यार्थी खेल का आँखों देखा हाल पूरी तन्मयता से सुनता है, पर अध्यापक द्वारा पढ़ाया जा रहा पाठ नहीं। वह कहानी-उपन्यास पढ़ने में कोई अड़चन महसूस नहीं करता, पर पाठ्यपुस्तकें पढ़ने में मन को लगा नहीं पाता। लेकिन मन पर पूर्ण नियंत्रण प्राप्त करने के लिए जितनी एकाग्रता की आवश्यकता है, उतनी ही अनासक्ति की भी, जिससे मन को स्वेच्छानुसार किसी भी विषय से हटाया जा सके। गीली मिट्टी के एक लोंदे को किसी भी दीवार पर फेंककर चिपकाया जा सकता है। उसे पुन: उस दीवार से पूरा का पूरा निकालकर दूसरी दीवार पर फेंककर चिपकाया जा सकता है, मन पर भी ठीक इसी प्रकार का नियन्त्रण होना चाहिए। अत: एकाग्रता के साथ अनासक्ति भी आवश्यक है, जो कर्मयोग के अभ्यास द्वारा प्राप्त होती है। छोटे-बड़े सभी कर्मों को पूरे मनोयोग से फलाकांक्षा त्यागकर भगवत्-समर्पित भाव से करना कर्मयोग कहलाता है। निष्काम भाव से भगवत्प्रीत्यर्थ किया गया कोई भी कर्म हीन नहीं है। झाड़ू लगाने से पूजा करने तक, प्रवचन देने से खेत में हल चलाने तक, सभी कार्य प्रभु के लिये करने पर आराधना ही हैं।

विभिन्न प्रकार के कला-कौशलों को सुचारु रूप से कर पाना उस कर्म-विशेष की शिक्षा अथवा प्रशिक्षण पर निर्भर करता है। वर्तमान में एक ही ढर्रे वाली शिक्षा में जो मुख्यत: मात्र बौद्धिक शिक्षा ही है, विद्यार्थी की कर्मदक्षता पर अधिक बल नहीं दिया जाता। अत: विद्यार्थियों को बढ़ई का कार्य, यांत्रिक (मेकेनिक) का कार्य, टंक-लेखन आदि छोटे-मोटे कौशल स्वयं अपने प्रयत्न से सीखने होंगे। यह कार्य वह अपने खाली समय में आसानी से कर सकता है।

हृदय की भावनाओं का सदुपयोग एवं उदात्तीकरण का उपाय भक्तियोग है। प्रत्येक मानव में प्रेम, करुणा, दया आदि भावनाएँ स्वभावत: ही रहती हैं, लेकिन ये सामान्यत: 'मैं' तथा 'मेरा' पर ही केन्द्रित रहती हैं। इन्हें भगवान की ओर मोड़ना तथा अपने छोटे से अहं-केन्द्रित सीमा को त्याग कर समग्र मानव-जाति की ओर प्रसारित करना आवश्यक है। भजन-कीर्तन, पूजा एवं भक्ति-ग्रन्थों के पाठ द्वारा भक्ति का प्रारम्भ किया जाता है, वह धीरे-धीरे वर्धित हो अन्त में भगवान के प्रति अनन्य एकनिष्ठ प्रेम में परिणत हो जाती है।

सर्वभूतों में भगवान का वास है। अत: भगवान को प्रेम करने का अर्थ सब प्राणियों से प्रेम करन भी है। हम अपने सगे-सम्बन्धियों एवं प्रियजनों के दुख में तो दुखी होते हैं, लेकिन संसार के असंख्य दुखी, पीड़ित, दरिद्र लोगों के दुख का अनुभव स्वयं नहीं कर पाते। इसका कारण यह है कि हम विरले ही कभी उनके सम्पर्क में आते हैं। हम अपने परिवार अथवा संकुचित सामाजिक सीमा में ही बन्द रहते हैं, हृदय की विशालता के लिए अपने पास-पड़ोस के लोगों से मिलना-जुलना एवं उनकी समस्याओं को समझने का प्रयत्न करना आवश्यक है। यह कार्य युवा-वर्ग बड़ी आसानी से कर सकता है। विद्यालयों अथवा अपने कार्यालयों से अवकाश मिलने पर वे अपने दो-चार साथियों के साथ गरीबों एवं हरिजनों की बस्तियों में जाकर उनकी समस्याएँ समझने का प्रयत्न कर सकते हैं। यह कार्य उनकी शिक्षा का एक अनिवार्य अंग होना चाहिए। अगर विद्यालयीय स्तर पर यह संभव न हो, तो इसे युवक व्यक्तिगत रूप से कर सकते हैं। गरीब अज्ञानी भारत-वासियों से यह सम्पर्क उनमें यह भाव जगायेगा कि ये सभी उनके भाई हैं। तब वे कह सकेंगे – "गरीब भारतवासी, अज्ञानी भारतवासी, चाण्डाल भारतवासी, ब्राह्मण भारतवासी मेरे भाई हैं।"

लेकिन यही पर्याप्त नहीं है। स्वामी विवेकानन्द चाहते थे कि इन दरिद्र, रोगी, पीड़ितों की शिवज्ञान से सेवा की जाय। भूखों को अन्नदान, नंगों को वस्त्रदान, अज्ञानी को विद्यादान, सर्वोपरि इन आर्त लोगों में आत्मविश्वास जगाकर अपने पैरों पर खड़े होने में सहायता करना – और भी भगवद्बुद्धि से। यह आधुनिक युग की सर्वश्रेष्ठ पूजा, वर्तमान काल की सर्वोत्कृष्ट साधना तथा मानव-निर्माणकारी शिक्षा का सबसे महत्त्वपूर्ण अंग है। क्या भारतीय युवा-वर्ग इस कार्य को नहीं कर सकता?

शास्त्रों का पठन-पाठन एवं सूक्ष्म विवेचन ज्ञानयोग के अन्तर्गत आता है। विश्व का ज्ञान भण्डार अनन्त है । इसके एक छोटे-से अंश की शिक्षा विद्यालयों में दी जाती है। अपने पाठ्य विषयों के अतिरिक्त अन्य विषयों का अध्ययन विद्यार्थियों को स्वयं करना होगा। स्वयं स्वामी विवेकानन्द ने संस्कृत, दर्शन, इतिहास, शरीर-रचना एवं क्रिया-विज्ञान आदि विषयों का ज्ञान अपने विद्यालयीय कार्यक्रम से भिन्न समय में अर्जित किया था।

चरित्र-गठनकारी शिक्षा

हमारा छोटा-बड़ा, शारीरिक अथवा मानसिक, प्रत्येक कार्य हमारे मस्तिष्क पर एक छाप, एक प्रभाव छोड़ जाता है। यह प्रभाव उसी प्रकार के कार्य को पुन: दुहराने का हेतु बन जाता है तथा उसे बार-बार करने की प्रेरणा देता है। यही कारण है कि एक बार चोरी करने पर व्यक्ति पुन: चोरी में प्रवृत्त होता है। ये बार-बार दुहराये गये कार्य आदत बन जाते हैं एवं इन्हीं शुभाशुभ आदतों का समूह चरित्र कहलाता है। जो व्यक्ति अपने सत्स्वभाव को भय, लालच या अन्य किसी कारण से भी नहीं त्यागता उसका चरित्र दृढ़प्रतिष्ठ कहलाता है। जैसा कि कहा गया है –

कोई बुरा कहे या अच्छा, लक्ष्मी आये या जाये।
लाखों वर्षों तक जीऊँ या मृत्यु आज ही आ जाये।।
अथवा कोई कैसा भी भय का लालच देने आये।
तो भी न्याय मार्ग से मेरा कभी न पथ डिगने पाये।।

आज हमें भारत में ऐसे हजारों चरित्रवान युवकों की आवश्यकता है, जो लाख रुपये के प्रलोभन से भी राष्ट्र के सुरक्षा-रहस्यों को शत्रु के हाथों न बेचें; अथवा क्षणिक उत्तेजना में आकर हत्या या अन्य अपराध न कर बैठें। ऐसा दृढ़चरित्र दीर्घ साधना एवं अथक प्रयत्न द्वारा ही निर्मित हो सकता है। प्रत्येक युवक प्रतिदिन छोटे-छोटे शुभ कार्य करे। इन्हें दुहराने से उसकी इच्छाशक्ति भी बलवती होगी। प्रतिदिन सूर्योदय के पूर्व शय्या त्यागकर भगवान का स्मरण करना, नित्य सत्साहित्य का पाठ करना, सत्य वचन कहना, नियमितता रखना, गरीब असहाय, आर्तों की सहायता करना, अपनी छोटी-छोटी वासनाओं का त्याग करना आदि कुछ ऐसे कार्य हैं, जिनके नित्य अभ्यास से महान चरित्र की नींव डाली जा सकती है।

आदर्शों को आत्मसात् करना

स्वामी विवेकानन्द कहते हैं – "शिक्षा विविध जानकारियों का ढेर नहीं है, जो तुम्हारे मस्तिष्क में ठूँस दिया गया हो और जो आत्मसात् हुए बिना वहाँ आजन्म पड़ा रहकर गड़बड़ मचाया करता है। यदि तुम केवल पाँच ही परखे हुए विचार आत्मसात् कर उनके अनुसार अपने जीवन और चरित्र का निर्माण कर लेते हो, तो तुम एक पूरे ग्रन्थालय को कण्ठस्थ करने वाले की अपेक्षा अधिक शिक्षित हो।"

उपर्युक्त कथन को कुछ दृष्टान्तों की सहायता से समझा जा सकता है। भारतीय इतिहास का अध्ययन करने पर हम पाते हैं कि भाई-भाई के झगड़ों, आन्तरिक कलह एवं शासकों की भोगलिप्सा के कारण भारत बार-बार परतन्त्रता की बेड़ियों से जकड़ा गया है। यह सम्भव है कि एक विद्यार्थी इतिहास की परीक्षा में प्रथम श्रेणी उत्तीर्ण होकर भी इतिहास की इस सीख को जीवन में न उतार सके। वह पढ़-लिखकर इतिहास का अध्यापक बन जाने पर भी अपने भाई या पड़ोसी से झगड़ा करता रह सकता है। ऐसी स्थिति में यही कहा जायगा कि उसने इतिहास की बौद्धिक जानकारी मात्र प्राप्त की है, शिक्षा नहीं। नागरिकशास्त्र हमें सिखाता है कि गन्दगी से बीमारियाँ फैलती हैं। अगर एक विद्यार्थी नागरिकशास्त्र में सर्वोच्च अंक प्राप्त करके भी गन्दा रहता हो, अथवा सड़क पर कूड़ा-करकट फेंककर रोगों को प्रोत्साहित करता हो, तो परीक्षा में पास होने पर भी वह शिक्षित नहीं कहला सकता। विज्ञान का स्नातक अपने विचारों एवं जीवन-पद्धति में अवैज्ञानिक अन्धविश्वासी और कट्टर हो सकता है। ये उदाहरण मात्र जानकारी प्राप्त करने और आदर्शों को आत्मसात् करने में अन्तर स्पष्ट कर देंगे। विद्या की प्रत्येक शाखा में बौद्धिक ज्ञान के अतिरिक्त जीवनोपयोगी आदर्श एवं सिद्धान्त भी निहित रहते हैं, जिनको अपने जीवन में व्यावहारिक रूप प्रदान किये बिना

बौद्धिक शिक्षामात्र की कोई उपयोगिता नहीं है। विद्यार्थी को अपने अध्ययन-काल में इस बात की ओर विशेष ध्यान रखना चाहिए।

कुछ व्यावहारिक सुझाव

प्रश्न हो सकता है, स्वामी विवेकानन्द द्वारा निरूपित आदर्श शिक्षा क्या सम्भव है, विशेषकर आज की परिस्थितियों में, जब वर्तमान विद्यालयीय शिक्षा का उद्देश्य एवं कार्यप्रणाली बिल्कुल भिन्न प्रकार के हैं? इस प्रश्न के उत्तर में यह कहा जा सकता है कि स्वामी विवेकानन्द कोरे आदर्शवादी, सैद्धान्तिक ही नहीं थे, बल्कि अत्यन्त व्यवहार-कुशल एवं कार्यक्षम भी थे तथा अपने सिद्धान्तों को कार्यरूप में परिणत करना अच्छी तरह जानते थे। उन्होंने रामकृष्ण-संघ की स्थापना चरित्र निर्माण के मुख्य उद्देश्य से ही की थी। बेलूड़ मठ के संन्यासियों को सम्बोधित करते हुए उन्होंने एकबार कहा था, "सदा याद रखो, इस संस्था का उद्देश्य मनुष्य निर्माण है।" स्वामीजी चाहते थे कि बेलूड़ मठ के समान अनेक केन्द्र सारे भारत में छा जायँ जहाँ मनुष्य-निर्माण का कार्य हो। यह आवश्यक नहीं कि यह कार्य केवल संन्यासी ही करें। आदर्शवादी युवक भी इसी प्रकार के आश्रम या संघ आदि की स्थापना कर परस्पर सहयोग से अपने चरित्र गठन के कार्य में प्रवृत्त हों।

जहाँ तक प्रशासनिक विद्यालयीय स्तर पर स्वामी विवेकानन्द की शिक्षा-प्रणाली को कार्यरूप प्रदान करने का प्रश्न है, यह कार्य कठिन प्रतीत होते हुए भी असंभव नहीं है। सर्वप्रथम तो स्वामी विवेकानन्द द्वारा निर्दिष्ट शिक्षा की परिभाषा एवं उद्देश्यों को सैद्धान्तिक रूप से राष्ट्र के शिक्षाविदों एवं संचालकों को स्वीकार करना होगा। उसके बाद वर्तमान राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर व्यक्ति एवं स्थान के अनुरूप उस लक्ष्य की प्राप्ति के उपायों को खोज निकालना होगा। पाश्चात्य शिक्षा की आवश्यकता को भी पूरी तरह अस्वीकार नहीं किया जा सकता। चरित्र-गठन के साथ-ही-साथ शिक्षा को अर्थकरी भी होना चाहिए। इन विभिन्न पक्षों का समावेश करने का प्रयास विभिन्न गैर-सरकारी संस्थाओं ने किया है। रामकृष्ण मिशन के शिक्षा-संस्थानों में आधुनिक शिक्षा के साथ स्वामी विवेकानन्द-प्रदर्शित मनुष्य-निर्माणकारी शिक्षा के समन्वय का सफल प्रयास हुआ है। लेकिन शिक्षा में एकरसता के लिए यह कार्य राष्ट्रीय स्तर पर होना चाहिए। जब तक यह नहीं होता, तब तक विद्यार्थियों को व्यक्तिगत रूप से तथा समान रुचि वाले सहयोगियों के साथ संघबद्ध रूप से यह कार्य करना होगा। विद्यालयीय कार्यकाल से खाली समय में वे चरित्र-निर्माण के लिए उनके उपाय स्वयं अपना सकते हैं। छुट्टियों में वे गाँवों अथवा गरीब बस्तियों में जाकर लोगों से मिलकर उनकी समस्याएँ समझने एवं सुलझाने का प्रयत्न कर सकते हैं।

श्रीरामकृष्ण का दृष्टान्त

अँगरेजी शासनकाल से हम पर थोपी गयी मात्र डिग्री दिलानेवाली तथा बाबू अथवा क्लर्क बनाने वाली शिक्षा आज तक भारत में चली आ रही है। वर्तमान काल में व्यवसाय सिखाने वाली अथवा धन्धे दिलाने वाली (Job oriented) शिक्षा पर बल दिया जा रहा है। इस सन्दर्भ में श्रीरामकृष्ण की उक्ति स्मरणीय है। जब उनके अग्रज श्री रामकुमार ने श्रीरामकृष्ण को पढ़ाई-लिखाई के प्रति उदासीन देखा, तो एक दिन उसने कहा कि विद्याध्ययन बिना वे जीविका अर्जन नहीं कर पायेंगे। इसके उत्तर में श्रीरामकृष्ण ने कहा कि वे मात्र रोजी-रोटी दिलाने वाली शिक्षा नहीं चाहते। वे तो ऐसी शिक्षा चाहते हैं, जो जीवन के चरम लक्ष्य एवं स्वरूप का ज्ञान प्रदान करे।

अर्थकरी औपचारिक विद्यालयीय शिक्षा की उपेक्षा के कारण श्रीरामकृष्ण सारे जीवन प्राय: निरक्षर ही रहे। लेकिन उन्होंने सत्य, त्याग, सेवा, करुणा, नि:स्वार्थ प्रेम, भगवद्-भक्ति आदि अनेक गुणों को अपने जीवन में पूर्णरूप से आत्मसात् किया था। बड़े-बड़े शास्त्रज्ञ पण्डित उनमें शास्त्रोक्त सत्यों की प्रत्यक्ष अनुभूति देखकर दंग रह जाते थे। भारतीय वेदविद् पण्डित एवं पाश्चात्य दर्शन एवं विज्ञान के आधुनिक विद्वान, दोनों ही उनके चरणों में बैठ एवं उनके उपदेश श्रवण कर अपने को धन्य समझते थे।

श्रीरामकृष्ण कहते थे, "जतो दिन आछि ततो दिन सीखी', अर्थात् 'मैं जब तक जीवित हूँ, तब तक सीखता हूँ।" व्यक्ति की शिक्षा वय अथवा एक अवस्था-विशेष पर ही समाप्त नहीं हो जाती और न ही वह विद्यालय की चहारदीवारी तक ही सीमित रहती है। एक सज्जन विद्यार्थी के लिए समग्र विश्व एक विद्यालय है, जड़ एवं चेतन सभी वस्तुएँ शिक्षक हैं, जीवन में घट रही समस्त शुभाशुभ घटनाएँ उसकी पुस्तकों के पन्ने हैं तथा समग्र जीवन ही शिक्षाकाल है, जहाँ वह निरन्तर ज्ञानार्जन करता है। ○○

विक्रम साराभाई

विक्रम साराभाई का जन्म १२ अगस्त, १९१९ में हुआ था। उनके पिता का नाम अम्बालाल साराभाई और माता का नाम सरला देवी था। विक्रम के पिता अम्बालालजी बहुत धनी व्यक्ति थे। उनकी कपड़े की मील एवं अन्य अनेक कारखाने थे। विक्रम और उसके भाई-बहनों की पढ़ाई आदि का वे बहुत ख्याल रखते थे। अपने बच्चों की पढ़ाई के लिए उन्होंने उन्हें स्कूल में न भेजकर अलग से अपने महल समान घर में व्यवस्था की थी। उनके लिए निष्णात शिक्षक रखे गए थे। वहाँ उन्हें अंग्रेजी, गुजराती, हिन्दी, संस्कृत, विज्ञान, चित्रकला, हस्तकला के साथ-साथ क्रिकेट, बैडमिंटन आदि सिखाया जाता था। बचपन से ही विक्रम के पिता उसे और उसके भाई-बहनों को लेकर देश-विदेश की सैर करते थे। विक्रम के पिता उनकी और उनके भाई-बहनों की प्रत्येक आवश्यकताओं का पूरा ख्याल रखते थे।

एकबार विक्रम का पूरा परिवार छुट्टी मनाने के लिए इंग्लैंड गया था। उस समय विक्रम की उम्र छः-सात वर्ष की रही होगी। विक्रम को वहाँ एक खिलौना बहुत पसन्द आया। उसने अपने पिता से वह खिलौना खरीदने के लिए कहा। पिताजी ने कहा कि अभी उनके पास पैसे कम है, यात्रा के अन्त में यदि पैसे बचेंगे तो वे उस खिलौने को खरीदेंगे। पिता के इस वचन से छोटा विक्रम बिल्कुल मान गया। अब यह बात वे दोनों बिल्कुल भूल गए। जब वे इंग्लैंड से वापस समुद्री जहाज से रवाना हो रहे थे, तब जहाज इटली के बंदरगाह पर रुका। अचानक विक्रम को उस खिलौने की याद आई। उसने पिता से यह बात कही। पिताजी ने अफसोस जताते हुए कहा, 'अरे भगवान! पैसे तो उस समय थे।' उन्होंने विक्रम से कहा कि वे फिर से इंग्लैड जहाज लेकर जाएँगे और वह खिलौना खरीदेंगे। किन्तु विक्रम ने कहा कि इसकी कोई आवश्यकता नहीं।

एकबार रवीन्द्रनाथ टैगोर उनके यहाँ आए थे, विक्रम का बड़ा ललाट देखकर उन्होंने कहा था, यह लड़का आगे जाकर महान सफलता प्राप्त करेगा। उनके घर में उस समय के अनेक महान व्यक्ति आते थे। जगदीश चन्द्र बोस, जदुनाथ सरकार, सी. वी. रामन, प्रसिद्ध वकील भूलाभाई देसाई, भरतनाट्यम की रुक्मनी अरुन्दाले, दार्शनिक जे. कृष्णमूर्ति, अभिनेता पृथ्वीराज कपूर उनके यहाँ आते थे। इसके अलावा महात्मा गाँधी, सरदार पटेल, मदन मोहन मालवीय, दादासाहेब मालवंकर, मौलाना आजाद, सरोजनी नायडू, डा. राधाकृष्णन, सी. एफ. एन्ड्रुज भी उनके घर आते थे । उनका परिवार स्वतन्त्रता संग्राम से जुड़ा था।

बच्चों का आंगन

एकबार महात्मा गाँधी जब अत्यधिक बीमार हुए थे, तब विक्रम के माता-पिता ने अपने घर लाकर उनकी सेवा की थी। विक्रम का पूरा परिवार महात्मा गाँधी से अत्यधिक प्रभावित था। जब महात्मा गाँधी ने नमक सत्याग्रह के लिए दांडी-कूच की थी, तब विक्रम ११ वर्ष का था। विक्रम का पूरा परिवार इस दांडी कूच में सम्मिलित था और उनमें से अनेकों को जेल भी हुई थी। बालक विक्रम और महात्मा गाँधीजी के बीच भी बहुत बातें होती थीं। विक्रम के चारों ओर इस प्रकार के स्वतन्त्रता संग्राम शुरू थे। विक्रम मन ही मन जानता था कि उसका उद्देश्य इन संग्रामों से न जुड़कर देश की अन्य प्रकार की सेवा करने में है।

विक्रम के अध्यापक सी. जे. भट्ट कहते हैं कि बचपन से ही उसकी रुचि विज्ञान के प्रति थी। वो विभिन्न प्रकार के तकनीकी मोडल बनाता था। उनके माता-पिता उसकी इस रुचि से अवगत थे। उन्होंने विक्रम के लिए घर में ही तकनीकी प्रयोगशाला बनवा दी थी, जिसमें लेथ, ड्रिल, फाउन्ड्री आदि थे। बाद में उसके साथ भौतिक, रासायनिक प्रयोगशालाएँ भी सम्मिलित कराई गईं। विक्रम अपना सारा समय इन प्रयोगशाला में ही बिताता था। विज्ञान और तकनीक से सम्बन्धित वह अनेक पत्रिकाएँ और पुस्तकें पढ़ता था।

अठारह वर्ष की उम्र में १९३७ में विक्रम अपने भाई गौतम के साथ कैम्ब्रिज उच्च शिक्षा के लिए गए । विक्रम के बारे में रवीन्द्रनाथ टैगोर ने समर्थन-पत्र लिखा था, 'इस युवक की विज्ञान में विशेष रुचि है...विश्वविद्यालय में प्रवेश के लिए यह उपयुक्त है।' वे १९३७ से १९४० तक कैम्ब्रिज में थे। उसके बाद वे इंडियन इन्स्टयूट आफ साईन्स, बंगलोर में

शेष भाग पृष्ठ ४३९ पर

गीतातत्त्व चिन्तन (१)

(आठवाँ अध्याय)

स्वामी आत्मानन्द

(ब्रह्मलीन स्वामी आत्मानन्दजी महाराज रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम के संस्थापक सचिव थे। उनका 'गीतातत्त्व चिन्तन' भाग-१,२, अध्याय १ से ६वें अध्याय तक पुस्तकाकार प्रकाशित हो चुका है और लोकप्रिय है। ७वाँ अध्याय का 'विवेक ज्योति' के १९९१ के मार्च अंक तक प्रकाशित हुआ था। अब प्रस्तुत है ८वाँ अध्याय, जिसका सम्पादन रामकृष्ण अद्वैत आश्रम के स्वामी निखिलात्मानन्द जी ने किया है)

गीता के आठवें अध्याय पर हम चर्चा करने जा रहे हैं। सातवें अध्याय की चर्चा हमने पिछली बार की थी। सातवें अध्याय का नाम है ज्ञान-विज्ञान योग। यह जो आठवाँ अध्याय है, उसको कहा गया है – अक्षर ब्रह्मयोग। क्यों कहा गया है? उस पर हम लोग थोड़ा-सा चिन्तन करेंगे। सातवें अध्याय के अन्त में दो श्लोक हैं। इन दोनों श्लोकों की चर्चा हमने पिछली बार की थी और कहा था कि इन दोनों श्लोकों का विशद अर्थ हम बाद में करेंगे, जब आठवें अध्याय की चर्चा करेंगे। वे दो श्लोक हैं –

जरामरणमोक्षाय मामाश्रित्य यतन्ति ये।
ते ब्रह्म तद्विदुः कृत्स्नमध्यात्मं कर्म चाखिलम्।।७/२९।।
साधिभूताधिदैवं मां साधियज्ञं च ये विदुः।
प्रयाणकालेऽपि च मां ते विदुर्युक्तचेतसः।।७/३०।।

भगवान कृष्ण अर्जुन से कह रहे हैं, कि **जरामरणमोक्षाय मामाश्रित्य यतन्ति ये** – जो जरा और मरण से मुक्ति पाने के लिए मेरा आश्रय लेकर यत्न करते हैं, साधना करते हैं, प्रयास करते हैं। जरा अर्थात् बुढ़ापा। बुढ़ापा बहुत बड़ा रोग है। और मृत्यु तो है ही। मृत्यु तो मनुष्य को प्राप्त होती है। तो मृत्यु से मुक्त होने का क्या मतलब? कि बुढ़ापे से मुक्ति मिल जाए, मृत्यु से मुक्ति मिल जाए। यदि मन के भीतर में आशा भरी हुई हो, बल भरा हुआ हो, और भीतर में ज्ञान लबालब भरा हुआ हो, तो ये दोनों प्रकार के त्रास मनुष्य को त्रस्त नहीं करते हैं। बुढ़ापे का कष्ट, शारीरिक कष्ट तो होता है। पर बुढ़ापे का अधिक कष्ट मानसिक होता है। आप विवेचन करके देखेंगे कि शरीर नहीं चल रहा है, यह जो बुढ़ापे का कष्ट प्रत्यक्ष दिखाई देता है। पर यदि हमारा मानसिक बल अच्छा है, तो शरीर का कष्ट हमें उतना दुखी नहीं बनाता। वस्तुतः अधिकांश मनुष्य तो मानसिक रूप से परेशान रहते हैं। बुढ़ापा मानसिक कष्ट हमारे भीतर लाता है। और यह जो मृत्यु की बात कही गयी है कि मृत्यु जब आनी होगी, तब तो वह आएगी ही। उसको तो कोई रोक नहीं सकता। जब मनुष्य की मौत है, तो वहाँ पर उससे छुटकारा है ही नहीं। पर यदि मनुष्य के मन में ऐसा बोध हो जाए, जिसको हम ज्ञानात्मक बोध कहते हैं, तो हर क्षण हमें मृत्यु का कष्ट जो सताता रहता है, उससे हमें मुक्ति मिल सकती है। मैंने एक बार एक घटना का उल्लेख आपके सामने किया था। तब मैं वशिष्ठ गुफा में था। पहली बार मैं जंगल में गया। वहाँ पर जंगली जानवरों की चीत्कार सुनने को मिलती। भालू भी मैंने पहले ही दिन रात को देखे। शेर की दहाड़ सुनाई पड़ती थी। उस समय वह बहुत भयावना जंगल था। अभी भी है। वहाँ से ऋषिकेश से २३ कि.मी. की दूरी पर बद्री-केदार जाने के रास्ते पर अवस्थित है। वहाँ बहुत घना जंगल था। अभी तो वहाँ पर कुछ बस्तियाँ भी आ गयी हैं। तो मैं यह कह रहा था कि उस समय मुझे बहुत डर लगता था। साधना के लिए वहाँ पर गया था। स्वामी पुरुषोत्तमानन्दजी महाराज वहाँ पर थे, जिनकी उम्र उस समय ८१ साल की थी। और वे लगभग ४० वर्षों से वहीं पर निवास कर रहे थे। उन्हें जब मालूम पड़ा कि मुझे भय लगता है, तो उन्होंने मुझसे कहा कि अपना समय गँवाने के लिए तुम यहाँ क्यों आ गये? जिसको डर लगता हो, वह आत्म-साधना कैसे कर सकता है? और तुम क्यों करना चाहते हो? जब तुम्हें यह डर ही नहीं छोड़ रहा है, तो तुम वापस चले जाओ। हमारा समय तुम नष्ट करते हो, अपना समय भी तुम गँवाते हो। वापस चले जाओ। और तब ! भीतर में बड़ी वेदना आई कि देखो तो मुझे कितना डर लग रहा है। मैंने उनसे प्रार्थना की कि मुझे एक मौका और यहाँ रहने के लिए दे दें । पर उन्होंने कहा

कि नहीं, इससे हम लोगों का समय नष्ट हो रहा है। तुम ८-९ दिन से यहाँ हो, पर भय की भावना को ही जीत नहीं सके। इसलिए तुम्हारा यहाँ साधना का कोई मतलब नहीं है। वापस जाओ। मैनेजर को बुलाकर कहा कि देखो, इस ब्रह्मचारी को जो भी बस ऋषिकेश जा रही होगी, उसमें बिठा देना। तब तो मैं रो पड़ा। मैंने कहा, ''महाराज, एक और अवसर दे दीजिये। अब आपको कोई शिकायत नहीं रहेगी।'' उन्होंने कहा कि रोने-धोने से कोई साधना होती नहीं है। और फिर, मैनेजर महाराज ने जब मेरी तरफदारी की, तो उन्होंने कहा कि ठीक है, तुम्हें एक और अवसर देते हैं। सिर्फ एक बार। इसके बाद नहीं। बाद में एकान्त में बुलाकर पूछा, ''तुम्हें डर किस बात का लगता है? क्यों इतने भयभीत होते हो?'' मैं कुछ उत्तर नहीं दे पाया। इसका क्या उत्तर दूँ कि मुझे डर किस बात का लगता है? उन्हीं ने उत्तर में कहा कि तुम्हें डर मृत्यु का लगता है। तुम मौत से डरते हो न? यही तो डर लगता है कि जंगल में कहीं चला गया, तो बाघ या जंगली जानवर आ जाएगा। इसीलिए डरते हो कि तुम गुफा में हो और रात में कोई जंगली जानवर आकर तुम्हें चोट पहुँचा सकता है। आखिर अधिक-से-अधिक क्या होगा? यही न कि तुम्हारी मौत हो जाएगी। तुम्हें इसी बात का डर लगता है। मैंने भी मन में विचार करके देखा कि डर तो मौत का ही लगता है। उन्होंने फिर समझाते हुए कहा कि देखो, अगर तुम्हारे कपाल में जंगली जानवर के हाथों मौत बनी हुई है, तब तो दिन में जब तुम शौच करने जाते हो, तब भी कोई जानवर तुम पर हमला कर सकता है। नहाने के लिए जब तुम गंगा में जाते हो, तो वहाँ पर आकर तुम पर आक्रमण कर सकता है, क्योंकि तुम हर समय गुफा के भीतर बन्द तो नहीं रहते। यदि तुम्हारे कपाल में जंगली जानवर के हाथों मौत न बनी हो, तब रात में वह जानवर तुम्हारे पास आकर बैठकर तुम्हें सूँघ भी जाए, तो भी तुम्हारा बाल भी बाँका नहीं होगा। इस तर्क पर विश्वास करते हो? तर्क तो बहुत सरल था। अविश्वास करने लायक कोई बात तो थी नहीं। तो मैंने कहा कि महाराज यह तर्क तो ठीक लगता है। उन्होंने कहा कि बस, फिर इसी तर्क पर तुम ध्यान करो। बाकी ध्यान की प्रक्रिया छोड़ दो।

इसी पर हरदम तुम ध्यान करो कि यदि तुम्हारे कपाल में जंगली जानवर के हाथों मौत लिखी हो, तो कभी-भी वह तुम्हें मार सकता है और अगर न लिखी हो, तो रात में वह तुम्हारे पास आकर बैठेगा, तो भी तुम्हें कोई हानि नहीं पहुँचेगी। इस पर तुम ध्यान तो करो जरा। हमने इस पर ध्यान किया और उनकी कृपा से भय दूर हो गया। मनुष्य की मौत तो एक बार होती है, पर वह सिर्फ उसके भय से ही कितनी बार मारा जाता है। यही मैं बताना चाहता था।

भगवान का यह कहना कि मरण से मोक्ष मिलेगा, इसका तात्पर्य यही है कि हम जो बारम्बार मरते हैं, क्षण-प्रतिक्षण मरते रहते हैं, इस बारम्बार मृत्यु के बोध से हमें छुटकारा मिल जाता है। बुढ़ापे की भावना से हमें छुटकारा मिल जाता है और यह जो मृत्यु की भावना है, उससे हमें मुक्ति मिलती है। यहाँ पर भगवान कहते हैं कि मेरा आश्रय लेकर साधना करने से साधना में अहंकार नहीं आ पाता है । क्योंकि भगवान ही हमारे आश्रय हैं। वे ही एक हमारे अवलम्ब हैं। ऐसा मानकर यदि साधना करें, अर्थात् पुरुषकार हो रहा है और पुरुषकार के साथ-साथ यह भावना भी बन रही है कि प्रभो ! यह शरीर रूपी यन्त्र तुम्हारी कृपा से कार्य कर रहा है। तुम्हारा आश्रय मैंने लिया है, तो इस प्रकार प्रभु का आश्रय लेकर कार्य करने से अहंकार उत्पन्न नहीं होगा। यदि हम ईश्वर का आश्रय न लें, और हम अपने अहंकार के बल पर साधना करते चलें, ऐसा सोचें कि मैं कितनी तपस्या करता हूँ, कितना जप करता हूँ, कितनी साधना करता हूँ, तो यह अहंकार बहुत खतरे का कारण बनता है, क्योंकि तनिक भी विघ्न पड़ा, तो मुझे सम्भालने के लिए कोई आधार नहीं है। असफलता मिली कि मैं टूटने लगता हूँ। इसीलिए यहाँ पर भगवान कहते हैं कि जो मेरा आश्रय लेकर प्रयत्न करते हैं, किसके लिए? **जरामरणमोक्षाय** – जरा और मृत्यु से मुक्ति के लिए जो प्रयत्न करते हैं, **ते ब्रह्म तद्विदुः** – वे उस ब्रह्म को जान लेते हैं। **कृत्स्नमध्यात्मम्** – समूचे अध्यात्म को जान लेते हैं। **कर्म चाखिलम्** – समस्त कर्म को जान लेते हैं। कैसे जानते हैं? **साधिभूताधिदैवं मां साधियज्ञं च ये विदुः** – अधिभूत, अधिदैव और अधियज्ञ के साथ जानते हैं। जो मुझे जानते हैं, उनका क्या होता है? **प्रयाणकालेऽपि च मां ते विदुर्युक्तचेतसः** – मृत्यु के समय भी, वे समाहित चित्तवाले मुझे जानते हैं। मानो मृत्यु हो रही है, फिर भी उनको मेरा ही बोध बना रहता है। ऐसा कहकर सप्तम अध्याय का अन्तिम श्लोक उन्होंने समाप्त कर दिया। फिर

से समझने की दृष्टि से इसे हम देख लें। भगवान कहते हैं कि देखो अर्जुन, जो बुढ़ापा और मृत्यु इन दोनों से मुक्ति पाने के लिए, मेरा आश्रय लेकर साधना करते हैं, वे उस ब्रह्म को जान लेते हैं। वे समूचे अध्यात्म को जान लेते हैं और समस्त कर्म के ज्ञाता बन जाते हैं। और भी तुम्हें बताऊँ अर्जुन, जो अधिभूत के साथ, अधिदैव के साथ और अधियज्ञ के साथ मुझे जानते हैं, वे मृत्यु के समय भी मुझे जानते रहते हैं। मृत्यु के समय भी मेरा बोध उनके भीतर बना रहता है। क्यों? क्योंकि उनका चित्त हर समय मेरे साथ युक्त होकर रहता है। ऐसा कहकर अध्याय समाप्त किया।

अब अर्जुन ने सोचा कि भगवान ने ये सब क्या-क्या नये शब्द कह दिये। मानो यह एक तरीका है किसी बात को बढ़ाने का और किसी बात को बढ़ाकर तत्त्व को समझाने का। यह अपना पुराना तरीका है। चाहे वह कहानी लेखक हो, चाहे वह दर्शन का क्षेत्र हो। हमारी जो भारतीय विधा है, उसमें यह प्रणाली मिलेगी। जैसे विष्णु शर्मा की लिखी कहानियाँ हैं। 'अरेबियन नाईट्स' की कहानियों का आधार भी भारतीय कहानी-कला है। वहाँ पर कहानी-कला में क्या है? जैसे आप पढ़ेंगे, ये कथाएँ आपके सामने आती हैं। छोटी-छोटी कथाएँ, हितोपदेश की कथाएँ हैं। कहानी के अन्त में एक नई बात कह दी जाती है। जो सुन रहा है, वह जिज्ञासावश पूछता है कि आपने बहुत-सी बातें कहीं, पर उसमें अन्तिम नई बात का अर्थ क्या है? यह कला यहाँ पर भी दिखाई देती है। अब यदि भगवान ने इतना कह दिया होता कि जो मेरा सहारा लेकर साधना करते हैं, वे ब्रह्म को जान लेते हैं और बुढ़ापे और मृत्यु से उनको छुटकारा मिल जाता है, तो अर्जुन को पूछने लायक कोई बात ही नहीं रहती। पर भगवान ने चतुराई की। उन्होंने कहा कि वे उस ब्रह्म को जान लेते हैं, वे समस्त अध्यात्म को जान लेते हैं, वे समूचे कर्म को जान लेते हैं और जो अधिभूत, अधिदैव, और अधियज्ञ के साथ मुझे जानता है, वह मृत्यु के समय भी मेरी याद बनाए रखता है। अर्जुन ने कहा, महाराज, यह आप कर्म, अध्यात्म, ब्रह्म की इतनी बातें कर रहे हैं, इन सबका क्या मतलब है आपका? इसको जरा समझा दीजिए। तो यहाँ से यह शुरु होता है आठवाँ अध्याय। मानो भगवान कृष्ण ने प्रश्न भी छोड़ दिया और अर्जुन उस प्रश्न को भगवान के सामने रखता है। क्या प्रश्न रखता है? **(क्रमशः)**

मानव-वाटिका के सुरभित पुष्प

डॉ. शरत् चन्द्र पेंढारकर

२९८. दोष व्यसन जामें रहे, सो सुख कबहुँ न पाय

संत विनोबा के विचारों से प्रभावित होकर सन् १९६० में भिंड-मुरैना के दुर्दान्त डाकुओं का हृदय बदल गया। कई डाकू आत्मसमर्पण हेतु तैयार हुए। उनकी देखादेखी एक डाकू ने आकर विनोबाजी से पूछा, ''मैं बड़ा पापी हूँ, मैं चरस, गांजे का आदी हूँ और मैंने अपना सारा जीवन शराब, चोरी, लूट, हिंसा और दुराचार में बिताया है। अब मुझे इसका पछतावा हो रहा है। घर-परिवार से दूर बीहड़ जंगलों में छिप-छिपकर रहने से मैं उब गया हूँ। आपसे क्षमा माँगने में भी मुझे लज्जा आ रही है। यदि अपनी शरण देकर मेरा आगे का जीवन सुधार सकें, तो जीवन भर आपकी भगवान की तरह पूजा करूँगा।''

विनोबाजी ने कहा, ''जिस भगवान ने तुम्हें जन्म देकर इस संसार में भेजा है, उसने तुम्हारे व्यसनों, दोषों और हत्या जैसे पापकर्मों से तुम्हें घृणा की दृष्टि से नहीं देखा, तब मैं तो तुम्हारे जैसा मानव ही हूँ। अतः मुझे भगवान का स्थान मत दो।'' उन्होंने आगे कहा, ''यह सच है कि ईमानदारी से धनोपार्जन करने के बजाय तुमने गलत मार्ग चुना। मनुष्य को इस बात पर गंभीरता से विचार करना चाहिए कि उसका कल्याण किसमें हैं। वास्तव में हम जिसे सुख समझते हैं, वह झूठा सुख होता है। हम बुरे व्यसनों और गलत धारणाओं के बन्धन में स्वयं को बाँधकर पतित हो जाते हैं। अब इसका पश्चात्ताप तुम्हें हो रहा है, तो जो हो चुका, उसे भूल जाओ और बुरा आचरण त्यागकर शान्तिपूर्वक जीवन जीने का संकल्प लो। तुम्हारे बुरे कर्मों के लिये मैं भले ही तुम्हें क्षमा कर दूँ, किन्तु कानून की दृष्टि में वह अपराध ही है। हाँ, अनेक हत्याओं के दोषी होने पर भी मैं तुम्हें प्राणदंड से बचाने और सजा कम करने हेतु अवश्य प्रयत्न करूँगा। इससे तुम्हें सुधरने का मौका मिलेगा।'' सत्पुरुष जानते हैं कि हर मनुष्य सुखी जीवन जीने की अभिलाषा मन में संजोए रहता है। किन्तु परिस्थितियाँ लोगों को गलत मार्ग पर चलने के लिये विवश करती हैं। खूँखार डाकू भी इसके अपवाद नहीं हैं। उनके भी हृदय में स्नेह-सरिता बहती रहती है। उनके साथ प्रेमपूर्ण व्यवहार और उन्हें सुधरने का सुयोग देने की आवश्यकता है, ऐसा करने से निश्चय ही सुखद परिणाम देखने को मिल सकते हैं। ○○○

स्वामी विवेकानन्द की कथाएँ और दृष्टान्त

(स्वामीजी ने अपने व्याख्यानों में दृष्टान्त आदि के रूप में बहुत-सी कहानियों तथा दृष्टान्तों का वर्णन किया है, जो १० खण्डों में प्रकाशित 'विवेकानन्द साहित्य' तथा अन्य ग्रन्थों में प्रकाशित हुए हैं। उन्हीं का हिन्दी अनुवाद क्रमश: प्रकाशित किया जा रहा है, जिसका संकलन स्वामी विदेहात्मानन्द जी ने किया है। – सं.)

८०. आदर्श दाम्पत्य सीता और राम

श्रीराम को पूर्ण ब्रह्म तथा सीताजी को आदिशक्ति माना जाता है । मेरे पास सीताजी की पूरी कथा बताने का समय नहीं है, परन्तु मैं उनके जीवन की एक घटना बताऊँगा, जो इस देश (अमेरिका) की नारियों के लिये अनुकरणीय है ।

जब उनके पति को वनवास दे दिया गया था और वे उन्हीं के साथ वन में निवास करती थीं । एक दिन वे दोनों एक ऋषिपत्नी का दर्शन करने गये । व्रत तथा उपासना में तल्लीन रहने के कारण सीताजी का शरीर काफी दुबला हो गया था ।

वे ऋषिपत्नी के पास गयीं और झुककर उन्हें प्रणाम किया । ऋषिपत्नी ने सीताजी के सिर पर अपना हाथ रखते हुए कहा, ''एक सुन्दर शरीर होना बड़े भाग्य की बात है; तुम्हें वह प्राप्त है । एक सज्जन पति मिलना उससे भी बड़े भाग्य की बात है; तुम्हें वह भी प्राप्त है । और सबसे बड़ा सौभाग्य है, ऐसे पति की पूर्णत: आज्ञाकारिणी होकर रहना; तुममें वह गुण भी है । तुम अवश्य ही सुखमय जीवन बिता रही होगी ।''

सीताजी ने उत्तर दिया, ''माता, मैं प्रसन्न हूँ कि ईश्वर ने मुझे एक सुन्दर शरीर दिया है और मुझे एक अत्यन्त निष्ठावान पति भी मिला है; परन्तु मैं नहीं जानती कि मैं उनकी आज्ञा के अनुसार चलती हूँ, या वे ही मेरे आज्ञाकारी हैं । केवल एक ही बात मुझे याद है; और वह यह कि जब उन्होंने यज्ञ की अग्नि के समक्ष मेरा पाणिग्रहण किया, तो उस समय या तो अग्नि के चकाचौंध के कारण अथवा स्वयं ईश्वर की इच्छा से मुझे ऐसा बोध हुआ कि मैं उनकी हूँ और वे मेरे हैं । उसी समय से मुझे लगता है कि मैं उनके जीवन की परिपूरक हूँ और वे मेरे जीवन के ।''

इस महाकाव्य के कुछ अंश अंग्रेजी भाषा में अनूदित हुए हैं । सीताजी भारतीय नारियों के लिये एक आदर्श हैं और ईश्वर के अवतार के रूप में पूजी जाती हैं । [CW, 9:195-196]

८१. मुक्ति के लिये व्याकुलता

जब हमारे मन में एक शान्तिपूर्ण, कोलाहलहीन जीवन बिताने की इच्छा उठेगी, तो हमें ऐसा एक स्थान मिलेगा जहाँ का सब कुछ मन के विकास के लिए अनुकूल होगा – मेरा तो ऐसा ही अनुभव है । भले ही वह हजारों जन्मों के बाद मिले, परन्तु मिलेगा अवश्य । उस इच्छा को बनाये रखो । यदि तुम्हारी इच्छित वस्तु का तुम्हारे बाहर अस्तित्व न हो, तो तुम्हारे मन में उसके लिये प्रबल इच्छा ही नहीं होगी । वैसे तुम्हें यह बात समझ लेनी होगी कि हर इच्छा एक जैसी प्रबल नहीं होती ।

गुरु ने कहा, ''बेटा, यदि तुम भगवान को पाना चाहते हो, वे अवश्य तुम्हारे लिये प्रकट होंगे ।''

शिष्य ने गुरु की बात का सही तात्पर्य नहीं समझा । एक दिन दोनों एक नदी में स्नान करने गये । गुरु ने शिष्य से कहा, ''पानी में डुबकी लगाओ ।'' शिष्य ने वैसा ही किया । गुरु ने तत्काल शिष्य को पकड़ा और उसे पानी में डुबाये रखा । वे शिष्य को ऊपर नहीं आने दे रहे थे ।

जब शिष्य ऊपर आने के लिये संघर्ष करता हुआ थक गया, तब गुरु ने उसे छोड़ दिया और पूछा, ''बेटा, उस समय पानी के भीतर तुम्हें कैसा लग रहा था?''

''अहा! बस, एक बार साँस लेने की इच्छा हो रही थी ।''

''क्या ईश्वर के लिए भी तुम्हारे मन में इसी प्रकार की प्रबल इच्छा है?''

''नहीं, महाराज ।''

''तो फिर ईश्वर-प्राप्ति के लिए भी उसी तरह की तीव्र इच्छा पैदा करो, तो तुम्हें ईश्वर अवश्य मिलेंगे ।'' (वि. सा. ३/९४-९५)

प्रश्नोत्तर-रत्नमालिका

श्रीशंकराचार्य

को ब्राह्मणैरुपास्यो गायत्र्यर्काग्निगोचरः शंभुः।
गायत्र्यामादित्ये चाग्नौ शंभौ च किं नु तत्तत्त्वम्।।६१।।

प्र. ब्राह्मणों से उपासना करने योग्य कौन है?

उ. गायत्री, सूर्य और अग्नि से वर्णित भगवान शंकर ब्राह्मणों के उपास्य हैं।

प्र. गायत्री, सूर्य, अग्नि और शंकर में क्या तत्त्व है?

उ. वही (परब्रह्म) तत्त्व है।

प्रत्यक्षदेवता का माता पूज्यो गुरुश्च कः तातः।
कः सर्वदेवतात्मा विद्याकर्मान्वितो विप्रः।।६२।।

प्र. प्रत्यक्ष देवता कौन है?

उ. माता प्रत्यक्ष देवता है।

प्र. पूज्य गुरु कौन है?

उ. पिता पूज्य गुरु है।

प्र. सर्वदेवता स्वरूप कौन है?

उ. विद्या और शुभ कर्मों से युक्त ब्राह्मण सर्वदेवता स्वरूप है।

कश्च कुलक्षयहेतुः सन्तापः सज्जनेषु योऽकारि।
केषाममोघवचनम् ये च पुनः सत्यमौनशमशीलाः।।६३।।

प्र. कुलक्षय का कारण क्या है?

उ. सज्जनों के प्रति किया गया सन्ताप कुलक्षय का कारण है।

प्र. किनके वचन अमोघ होते हैं?

उ. जो सत्य, मौन और शम (मनोनिग्रह) स्वभाव वाले होते हैं, उनका वचन अमोघ होता है।

किं जन्म विषयसंगः किमुत्तरं जन्म पुत्रः स्यात्।
कोऽपरिहार्यो मृत्युः कुत्र पदं विन्यसेच्च दृक्पूते।।६४।।

प्र. जन्म का कारण क्या है?

उ. विषयासक्ति जन्म का कारण है।

प्र. जन्म के पश्चात जन्म क्या है?

उ. पुत्र ही बाद वाला जन्म है।

प्र. अपरिहार्य क्या है?

उ. मृत्यु अपरिहार्य है।

प्र. किस पथ से चलना चाहिए?

उ. पवित्र दृष्ट मार्ग से चलना चाहिए।

पात्रं किमन्नदाने क्षुधितं कोऽर्च्यो हि भगवदवतारः।
कश्च भगवान् महेशः शङ्करनारायणात्मैकः।।६५।।

प्र. अन्नदान का पात्र कौन है?

उ. भूखा व्यक्ति अन्नदान का अधिकारी है।

प्र. पूजनीय कौन है?

उ. भगवद्-अवतार पूजनीय है।

प्र. भगवान कौन है।

उ. शंकर और नारायण के जो अभिन्नस्वरूप हों, वे भगवान हैं।

फलमपि भगवद्भक्तेः किं तल्लोकस्वरुपसाक्षात्त्वम्।
मोक्षश्च को ह्यविद्यास्तमयः कः सर्ववेदभूः अथ च ॐ।।६६।।

प्र. भगवद्भक्ति का फल क्या है?

उ. भगवान के लोक की प्राप्ति और भगवान के स्वरूप का साक्षात्कार।

प्र. मोक्ष क्या है?

उ. अविद्या का नाश मोक्ष है।

प्र. सर्ववेदों की उत्पत्ति कहाँ से हुई?

उ. ॐ से सभी वेदों की उत्पत्ति हुई।

इत्येषा कण्ठस्था प्रश्नोत्तररत्नमालिका येषाम्।
ते मुक्ताभरणा इव विमलाश्चाभान्ति सत्समाजेषु।।६७।।

यह प्रश्नोत्तर-रत्नमालिका जिनके कण्ठ में स्थित है, वे मुक्ता-आभूषण के समान सत्पुरुषों के समाज में प्रकाशित होंगे। **(समाप्त)**

साधक-जीवन कैसा हो? (२१)

स्वामी सत्यरूपानन्द

सचिव, रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर (छ.ग.)

(ईश्वरप्राप्ति के लिये जिज्ञासु साधना में प्रयत्नशील रहते हैं । किन्तु प्राय: वे उन चीजों की उपेक्षा कर जाते हैं, जिन छोटी-छोटी चीजों से साधक-जीवन ईश्वर की ओर अग्रसर होता है । एक साधक का जीवन कैसा होना चाहिये और उसे अपने जीवन में किन-किन चीजों का ध्यान रखना चाहिये, इस पर विभिन्न दृष्टिकोणों से इस व्याख्यान में चर्चा की गयी है । प्रस्तुत व्याख्यान स्वामी सत्यरूपानन्द जी महाराज ने रामकृष्ण मठ, धन्तोली, नागपुर द्वारा आयोजित आध्यात्मिक शिविर में मार्च, २०११ में दिया था । विवेक-ज्योति के पाठकों हेतु इसका टेप से अनुलिखन नागपुर की सुश्री चित्रा तायडे और कुमारी मिनल जोशी ने तथा सम्पादन स्वामी प्रपत्त्यानन्द ने किया है । – सं.)

मैं कहता हूँ कि जीवन में ऐसी परिस्थितियाँ भी आती हैं। इसलिए साधक को इस प्रकार के व्यर्थ व्यय से बचना चाहिए। हमारा आहार-विहार, वस्त्र हमारे अहंकार की तुष्टि के लिए नहीं होने चाहिए। वह समाज की सुव्यवस्था तथा परिवेश के अनुकूल हो। इसका यहाँ अर्थ नहीं कि हम दरिद्र की तरह रहें। हम अपने सामाजिक स्तर पर रहें। साधक को जीवन में कुछ मर्यादाएँ स्वीकार करनी चाहिए।

साधक के जीवन में दैनिक उपासना या साधना अवश्य होनी चाहिए। साधना तो जीवन पर्यन्त चलनी चाहिए। आप-हम सबका यह कर्तव्य है कि हम अपने जीवन में साधना प्रारम्भ करने के पहले अपने इष्ट का निर्णय कर लें। भगवान की किस रूप में आप उपासना करना चाहते हैं, इसका निर्णय तो आपके गुरु या मार्गदर्शक ही करेंगे। यदि आपने गुरुवरण न किया हो, तो अपनी रुचि, स्वभाव के अनुसार अपने इष्ट का निर्णय करें। जिन्होंने गुरुवरण किया है, जिन्हें गुरु ने इष्ट बता दिया है और जिन्होंने साधना प्रारम्भ की है, उन्हें अपने इष्ट के सम्बन्ध में २-३ बातें अपने मन में दृढ़तापूर्वक बिठा लेनी चाहिए। सबसे पहली बात कि मेरे इष्ट सर्वशक्तिमान हैं, सर्वसमर्थ हैं, हमें अपने इष्ट की किसी से तुलना नहीं करनी चाहिए। दूसरी बात कि वे सर्वज्ञ हैं। सब कुछ जानते हैं। पहले तो सर्वशक्तिमान हैं, दूसरे सर्वज्ञ हैं। केवल इतना मानने से ही मन में उत्साह आना कठिन होता है। मेरे इष्ट तो सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान हैं, किन्तु मैं तो दीन-हीन दुर्बल हूँ। मुझमें मानवीय दुर्बलताएँ हैं। मैं षड्‌रिपुओं से पीड़ित हूँ। इन दुर्बलताओं से मेरी रक्षा कैसे होगी? तीसरी बात है, मेरे इष्ट दया के सागर हैं। इसलिए उनसे प्रार्थना करने पर वे मुझे सभी दुर्बलताओं से मुक्त कर मेरा जीवन धन्य कर देंगे। जैसे मक्खन का स्वभाव है कि वह ताप से पिघल जाता है, उसी प्रकार हमारे इष्ट का यह स्वभाव है कि वे हमारे दुखों को देखकर हमारी प्रार्थना सुनकर अपने आप द्रवित हो जाते हैं तथा हमें इन दुखों से मुक्त कर देते हैं। किन्तु हमें अपने इष्ट से अपनी दुर्बलताओं को दूर करने की प्रार्थना अवश्य करनी चाहिए।

पहली बात गुरुवरण करें, इष्ट-चयन करें, इष्टनिष्ठा रखें। मेरे इष्ट में अनन्त गुण हैं, किन्तु ये तीन गुण विशेष हैं – वे सर्वशक्तिमान हैं, सर्वज्ञ हैं और दया के सागर हैं। इन तीन गुणों का पोषण करें, तो हमारा कल्याण अवश्य होगा। मैं कितना भी पतित क्यों न होऊँ, संसार के जघन्य से जघन्यतम पाप मैंने क्यों न किये हों, किन्तु मेरे इष्ट दया के सागर हैं, सर्वशक्तिमान हैं, सर्वज्ञ है, वे मेरा उद्धार अवश्य करेंगे, ऐसा दृढ़ विश्वास रखें।

सबसे महत्त्वपूर्ण बात गुरु के प्रति कभी भी मनुष्य-बुद्धि नहीं रखनी चाहिए। "गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु: गुरुर्देवो महेश्वर:।" कहा जाता है। कहते हैं कि स्वयं परमात्मा या मेरे इष्ट परमेश्वर गुरु के रूप में मुझ पर कृपा करने आए हैं। व्यक्ति के रूप में सबके गुरु अलग-अलग हो सकते हैं, किन्तु गुरुशक्ति एक ही है। स्वामी सारदानन्द जी महाराज ने श्रीरामकृष्णलीलाप्रसंग में इसका सविस्तार वर्णन किया है। दूसरे के गुरु से अपने गुरु की तुलना भी कभी नहीं करनी चाहिए। ईश्वर को हमने नहीं देखा है, पर गुरु को देखा है। हमें उनका आशीर्वाद मिला, उनसे इष्ट-मंत्र मिला। इन क्षणों को याद करें। गुरुमन्त्र में दृढ़निष्ठा, अटूट श्रद्धा और विश्वास रखें कि आज नहीं, तो कल वह मुझे भवासागर पार करा देगा। गुरुदेव ने साधना की जो पद्धति बतायी हो, उस पर पूर्ण और दृढ़ निष्ठा रखनी चाहिए। अन्य आचार्यों, गुरुओं, विद्वानों और शास्त्रों से हम कुछ सहायता ले सकते हैं, किन्तु कभी भी अपना मन्त्र और गुरु नहीं बदलना चाहिए। साधना निरन्तर करनी चाहिए। एक भक्त परिवार की बिटिया कह रही थी, बाबा किसी-किसी दिन जप करना छूट जाता है। हमने कहा, बेटा यह ठीक नहीं है। हम सबके जीवन में उपासना एक भी दिन छूटनी नहीं चाहिए। समय कम-अधिक हो सकता है, समय कम हो, तो कम करें, किन्तु नियमित हो। नियम बना लें कि अपनी उपासना के बिना हम भोजन नहीं करेंगे। ब्राह्मण परिवारों में उपनयन संस्कार के समय बटुक को सिखाया जाता था कि संध्या-वंदन या गायत्री मंत्र जप किये बिना भोजन नहीं करना। मैं ऐसे कुछ ब्राह्मण परिवारों को जानता हूँ। ऐसा आप निश्चय कर लें कि गुरुमंत्र का जप किये

बिना हम भोजन ग्रहण नहीं करेंगे। सुबह उठकर यदि मैं सोचूँ कि आज का दिन मेरा अंतिम दिन है, तो मैं बहुत से अनुचित कार्यों से बच जाऊँगा। परीक्षित की कथा इसका एक उदाहरण है।

पू. स्वामी यतीश्वरानन्दजी महाराज ने ५० वर्ष पहले अपने युवक शिष्य, जो अब हमारे मठ का संन्यासी है, से कहा था कि एक दिन के लिये भी तुम्हारी साधना में नागा न हो। जप, ध्यान में अपने को अधिक तनाव में न डालना । सहजता से जितना हो सके, उतना करना। हममें से प्रत्येक को अपनी शक्ति के अनुसार साधना करनी चाहिए तथा उसे धीरे-धीरे बढ़ाना चाहिए।

प्रार्थनापूर्ण भाव को बनाये रखें। आप वचनामृत पढ़ते हैं। जब बेलूड़ मठ के ब्रह्मचारी प्रशिक्षण केन्द्र में मैं आचार्य था, तब एक ब्रह्मचारी से कहा था कि श्रीरामकृष्ण देव ने पूरे वचनामृत में कितनी बार जप की बात कही है और कितनी बार प्रार्थना की बात कही हैं। उस ब्रह्मचारी ने पूरे वचनामृत में से बड़े परिश्रम से कुछ महीनों में इन्हें खोज कर निकाला। ठाकुर ने केवल ६-७ बार जप-ध्यान की बात कही है, किन्तु प्रार्थना की बात ४६-४७ बार कही है। आध्यात्मिक जीवन में प्रार्थना का महत्त्व बहुत अधिक है। अपने इष्ट से बातचीत करना ही प्रार्थना है।

प्रार्थना का अर्थ कुछ स्तोत्रों, किसी भी भाषा में लिखे गये कविताओं आदि की आवृत्ति मात्र नहीं है। प्रार्थना का अर्थ है, अपनी दुर्बलताओं और अभावों को दूर करने के लिए अथवा ईश्वर के प्रति भक्ति तथा उनके चरणों में निर्भरता के लिये व्याकुल अन्त:करण से अपने इष्ट से निवेदन करना।

स्वामी यतीश्वरानन्द जी महाराज ने मुझसे कहा था, अपने इष्ट से बातचीत करने की आदत डालो। दूसरों से व्यर्थ चर्चा मत करो? जब तुम्हारे पास समय है या तुम अकेले हो तो अपने इष्ट से बातचीत करो। प्रार्थना करो।

स्वामी शिवानन्द महाराज की पुस्तक 'आनन्द धाम की ओर' और 'स्वामी तुरीयानन्द की पत्रावली' आदि में प्रार्थना पर बहुत चर्चा है। उसी प्रकार आपके गुरुओं द्वारा बतायी गयी पद्धति से प्रार्थना करने पर आपके जीवन में निश्चित रूप से आध्यात्मिक मार्ग-दर्शन मिलेगा। कैसे साधना करें, इसका निर्देश मिलेगा। मैं प्रभु से प्रार्थना करता हूँ कि वे आपका-हमारा मार्गदर्शन करें तथा हम उनके मार्गदर्शन को समझने में समर्थ हो सकें।

भगवान गीता में स्पष्ट कहते हैं, 'ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति', इस प्रकार आप सबमें वही ईश्वर विद्यमान हैं, मैं आप सबके चरणों में श्रद्धापूर्वक प्रणाम करता हूँ और अपनी बात समाप्त करता हूँ। धन्यवाद !

(समाप्त)

भारत की ऋषि परम्परा (९)

स्वामी सत्यमयानन्द

(भारत वर्ष के प्राचीन ऋषियों का सरल, सरस और सारगर्भित विवरण स्वामी सत्यमयानन्द जी महाराज, सचिव रामकृष्ण मिशन, कानपुर ने अपनी पुस्तक 'Ancient Sages' में किया है। विवेक ज्योति के पाठकों हेतु इसका हिन्दी अनुवाद दिया जा रहा है। – सं.)

ऋषि कश्यप

हिन्दू मन की प्रवृत्ति सदैव से ही चिन्तन-मनन की ओर रही है। यह हम इस बात से जानते हैं कि वेदों के ईश्वर-तुल्य चिरन्तन सत्य अथवा ज्ञान-राशि का दर्शन ध्यानावस्था में कुछ पवित्र व्यक्तियों को हुआ था। वे सब ऋषि थे, सत्य स्वरूप मन्त्रों के द्रष्टा थे। हिन्दू पुराण की यह विशेषता है कि उसने अपने अद्भुत इतिहास का ताना-बाना इन महान ऋषि-महर्षियों की कथाओं द्वारा बनाया, न कि किसी काल्पनिक पात्र अथवा वस्तुओं से। यह
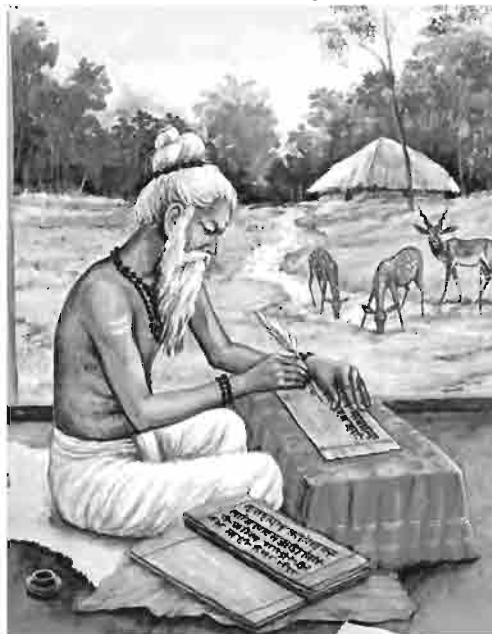
इस तथ्य से ज्ञात होता है कि वर्तमान हिन्दू समाज अपनी वंश की परम्परा इन ऋषियों तक बता सकते हैं ।

कश्यप महर्षि मरीचि के पुत्र थे। मरीचि ब्रह्मा के सात मानस-पुत्रों में से एक थे। कश्यप की माता का नाम कला था और वे प्रजापति कर्दम की पुत्री थीं। उनके भाई का नाम पूर्णिमान था। कुछ पुराणों में कश्यप का वर्णन सभी जीवों के प्रथम पूर्वज के रूप में आता है। वाल्मीकि रामायण में कुछ पृथक वर्णन आता है, जिसमें कश्यप को छ: मानस ऋषियों के अनुज के

रूप में बताया गया है।

अधिकांश हिन्दू जाति कश्यप गोत्र के अन्तर्गत आती है। इस प्रकार का वर्णन प्राप्त होता है कि आरम्भ में चार गोत्र थे, वे महर्षि वशिष्ठ, भृगु, अंगिरस और कश्यप के थे। परवर्तीकाल में इनका उपविभाजन हुआ। महाभारत के अनुसार देवताओं और उपदेवताओं सहित जीवों की उत्पत्ति ऋषि कश्यप से हुई। उनकी सहधर्मिणी अदिति के द्वारा आदित्य देवताओं की और मुनि नामक पत्नी से मनुष्यों की उत्पत्ति हुई। उनकी इक्कीस पत्नियों में से तेरह दक्ष प्रजापति की कन्याएँ थीं। कश्यप को अदिति सबसे प्रिय थीं, उन्हीं से ही देवताओं की उत्पत्ति हुई थी। उनका दो बार एक साथ पुनर्जन्म हुआ था। उनकी सरलता, पवित्रता और भक्ति से प्रसन्न होकर दोनों बार श्रीहरि ने उनके यहाँ पुत्र के रूप में अवतार ग्रहण किया, प्रथम बार वामन और बाद में श्रीकृष्ण के रूप में । उनकी सभी अनगिनत सन्तानों ने अपने माता-पिता के उच्च आदर्शों और चरित्र को ग्रहण किया।

ब्रह्मा की ऋषि-सभा में कश्यप मुख्य थे। ब्रह्माजी उनके ऊपर इतने प्रसन्न हुए कि उन्होंने कश्यप को विद्या की अनेक शाखाओं का ज्ञान प्रदान किया और पूर्ण पृथ्वी उन्हें दे दी। पृथ्वी की अधिष्ठातृ-देवी भूदेवी इससे अप्रसन्न हुईं, वे कश्यप की महानता को जानती नहीं थीं। उन्हें प्रसन्न करने के लिए कश्यप ने घोर तपस्या की। उनकी निष्ठा और शक्ति को देखकर भूदेवी प्रसन्न हुईं। अभी भी भूदेवी से सम्बन्धित अनुष्ठान-मन्त्रों में इस प्रकार वर्णन आता है, ''हे उत्कृष्ट पृथ्वी ! आप जगत को ईश्वर प्रदत्त भेंट हैं, आप कश्यप के द्वारा वन्दित हैं।'' पुराण में एक अन्य वर्णन के अनुसार, जब परशुराम ने क्षत्रियों का संहार किया था, तब उन्होंने सम्पूर्ण पृथ्वी कश्यप को प्रदान की थी।

महर्षि कश्यप अपनी महानता और आध्यात्मिक प्रभाव के कारण आध्यात्मिक और लौकिक ज्ञान के कुशल निर्णायक और आचार्य बन गए थे। शान्ति और समृद्धि को बनाए रखने के लिए वे तपस्या और तीर्थयात्राएँ करते थे। वे स्वयं भी अनिष्ट परिस्थिति का विनाश करते थे। उदाहरण के तौर पर उन्होंने भ्रष्ट हो चुके यदु वंश का विनाश किया था। ऋषि कश्यप से सम्बन्धित कुछ प्रचलित कथाएँ उन्हें एक महान धर्माचार्य के रूप में दर्शाती हैं।

प्राचीन मनुष्यों ने सृष्टि, प्राकृतिक घटनाएँ, इतिहास, रीति-रिवाज को समझाने के लिए पौराणिक कथाओं की रचना की थी। वर्तमान समय में इन्हें मनगढ़न्त बातें अथवा मनोराज्य कहकर इनका खण्डन किया जाता है। किन्तु जनमानस में दर्शन और धार्मिक कार्यों के प्रचार-प्रसार के लिए पहले के समान आज भी महान ऋषि और राजाओं से सम्बन्धित सत्य घटनाओं को इन कथाओं के माध्यम से कहा जाता है।

ऋषि कश्यप के दैनन्दिन जीवन के विषय में कुछ ज्ञात नहीं है, किन्तु उस समय के अन्य लोगों के समान उनकी भी नित्य दिनचर्या वेदाध्ययन, नित्य धार्मिक-अनुष्ठान, तपस्या, ध्यान आदि में बीतती होगी। उनसे सम्बन्धित प्रसिद्ध कथाओं और अन्य उपाख्यानों के प्रभाव से उनका महान और आदरणीय व्यक्तित्व विशेष रूप से परिलक्षित होता है।

प्राचीन अथवा अर्वाचीन भारतीय संस्कृति तपोनिष्ठ है। तपस्या का अर्थ केवल शारीरिक दमन नहीं है। इसके अन्तर्गत सभी नियम-साधनाओं यथा – पवित्रता, सत्य, त्याग, शम, दम का समावेश होता है। आर्यों की प्रत्येक शारीरिक, मानसिक चेष्टा-प्रचेष्टा तपस्या के रूप में होती थी। शास्त्र कहते हैं, ईश्वर ने स्थूल और सूक्ष्म लोकों की सृष्टि के पूर्व तपस्या की थी। आदि स्रष्टा प्रजापति ने भी इस तपस्या के सिद्धान्त पर अपने सृष्टि आदि कार्य सम्पन्न किए थे।

अवधूत दत्तात्रेय

दत्तात्रेय भगवान का नाम स्मरण होते ही मानसपटल पर साक्षात्कारी ऋषि, सिद्ध योगी, नित्य-मुक्त संन्यासी का चित्र उभर आता है, जो सर्व बन्धनों को काट कर दृश्य-जगत की सीमाओं से परे चले गए हैं। दत्तात्रेय अवधूत के तीन सिर और छह हाथ हैं । उनके साथ एक गाय और चार श्वान रहते हैं। उनके तीन सिर ब्रह्मा, विष्णु और शिव के अंश से हैं। उनके छह हाथ देवताओं की छह शक्तियों के प्रतीक हैं। उनका अनुसरण करने वाले चार श्वान चार वेदों के प्रतीक हैं, गाय सर्वदात्री पृथ्वी का प्रतीक है। भारत के अनेक मन्दिरों में उनके इस चित्र की पूजा होती है।

दत्तात्रेय ब्रह्मा के मानस-पुत्र महर्षि अत्रि के पुत्र थे। उनकी माता का नाम अनसूया था। वे साक्षात पवित्रता की मूर्ति थीं। पुराणों में दत्तात्रेय का जन्म-वृत्तान्त बड़ा ही रोचक है। उग्रश्रव नामक एक ब्राह्मण कुष्ठ-रोगी थे। उनकी पतिव्रता स्त्री का नाम शीलवती था। एक रात उग्रश्रवा की एक वेश्या के पास जाने की इच्छा हुई और वे शीलवती के कन्धों के सहारे वहाँ जाने लगे । मार्ग में ऋषि अणिमांडव्य यह देखकर खिन्न हो गए । उन्होंने उग्रश्रवा को शाप दिया कि अगले दिन भोर में उसकी मृत्यु हो जाएगी। शीलवती इससे व्यथित हो गई। उसने

शाप का विरोध करते हुए कहा, 'कल सूर्य का उदय नहीं होगा।' उसके वचन सत्य हुए। सूर्य उदित नहीं हुआ और सम्पूर्ण जगत अन्धकार और अव्यवस्था से व्याप्त हो गया।

देवतागण इस समस्या के निराकरण हेतु ब्रह्मा के पास गए। वे बोले, 'पातिव्रत के प्रभाव के कारण ऐसा हुआ है। शाप के निष्प्रभाव के लिए आप पतिव्रता-श्रेष्ठ महर्षि अत्रि की पत्नी अनसूया के पास जाइए।' देवतागण तुरन्त अनसूया के पास गए और पूर्ण वर्णन कह सुनाया। उन्होंने शीलवती से कहा, 'मेरी प्रिय, सर्वत्र जीव संकट में हैं। कृपया अपना शाप वापस लो और सूर्य को उदय होने दो। जब ऋषि-शाप के कारण तुम्हारे पति मृत्यु को प्राप्त होंगे, तब मैं उन्हें पुनर्जीवित कर दूँगी।' शीलवती शान्त हुई और सहमत हो गई। शाप दूर होने पर सब कुछ यथाक्रम चलने लगा।

ब्रह्मा, विष्णु और शिव सहित अन्य देवतागण अनसूया पर प्रसन्न हुए और उनसे वरदान माँगने के लिए कहा। उन्होंने प्रार्थना की कि ब्रह्मा, विष्णु और शिव के अंश से उन्हें पुत्र-प्राप्ति हों। उन्हें वरदान प्राप्त हुआ और क्रमश तीन पुत्र – चन्द्र, दत्तात्रेय और दुर्वासा हुए।

बाल्यावस्था से ही दत्तात्रेय वेद और अन्य शास्त्रों के अध्ययन में लग गए थे। सर्वप्रथम उन्होंने माता-पिता के चरणों में और तदनन्तर गुरुकुल में शिक्षा ग्रहण की। उनका जन्म वेदों के पवित्र सिद्धान्तों के पुनरुज्जीवन के लिए हुआ था। सूक्ष्म ज्ञान को ग्रहण करने की परम्परागत विद्याओं को बनाए रखने के लिए वे शास्त्र-विधि से गुरु के पास गए और वेदान्त का अध्ययन किया। कुछ प्रमाणों के अनुसार उनके गुरु महान तपस्वी महर्षि ऋभु थे।

योग में सिद्धि प्राप्त करने के बाद उन्होंने सर्वोच्च ज्ञान की विद्या प्राप्त की। उन्होंने बड़े मनोयोग से आध्यात्मिक साधना की और निरपेक्ष सर्व-व्याप्त सत्ता, जिसे ब्रह्म कहते हैं, उसका साक्षात्कार किया। दत्तात्रेय अवधूत एक आदर्श संन्यासी थे। वे लोक-जगत से दूर एकाकी, निर्भय, स्वच्छन्द विचरण करते थे। योग से सुदृढ़ ब्रह्म-ज्ञान के अतिरिक्त उनका कोई साथी नहीं था। उनका तेजोमय व्यक्तित्व उनके सर्वोच्च ज्ञान और आनन्द को अभिव्यक्त करता था तथा उन लोगों को आकर्षित करता था, जिनका अज्ञान वे दूर करना चाहते थे। इसके लिए वे प्राय: अपनी यौगिक शक्तियों का उपयोग करते थे।

हिन्दुओं के आध्यात्मिक ग्रन्थ और परम्परा के अनुसार मनुष्य जीवन का उद्देश्य मुक्ति प्राप्त करना है। संन्यासी 'क्षुरस्य धारा' के समान इस पथ का स्वेच्छा और निष्ठापूर्वक अनुगमन करता है, इसलिए उसे सर्वोच्च सम्मान प्रदान किया जाता है। दत्तात्रेय संन्यासियों के मूर्तिमान आदर्श थे। परवर्तीकाल के धार्मिक साहित्य, पुराण और कुछ उपनिषदों में उनके अद्वितीय जीवन और उपदेशों का वर्णन प्राप्त होता है, जिसमें उन्हें त्याग, पवित्रता, योग और ब्रह्म-ज्ञान में प्रतिष्ठित दर्शाया गया है।

अवधूत ने धर्म में निष्ठा न रखने वालों का संग त्याग दिया था। केवल पृथ्वी पर रहने वाले जीव ही उनकी सहायता प्राप्त करने नहीं आते थे, किन्तु असुरों से व्यथित और आतंकित हुए देवतागण भी उनकी सहायता प्राप्त करने आते थे। वे सभी को अपनी शरण और सहायता प्रदान करते थे।

अवदूत दत्तात्रेय की महानता का वर्णन अनेक पुराणों में प्राप्त होता है। श्रीमद्भागवत में उनके और राजा यदु के बीच संवाद का वर्णन आता है, जिसमें वे राजा को बताते हैं कि किस तरह सूक्ष्म अवलोकन के द्वारा उन्होंने चौबीस गुरुओं से त्याग सम्बन्धी उपदेश ग्रहण किए थे। सरल और उत्कृष्ट होने के कारण ये कथाएँ बहुत प्रसिद्ध हैं। आध्यात्मिक साधकों के लिए ये कथाएँ ईश्वर-प्राप्ति की मूलभूत योग्यताओं का संकेत करती हैं।

बालक के समान महान योगी दत्तात्रेय का व्यक्तित्व अद्भुत था। कभी-कभी उनके अनेक अनुयायी ऋषिकुमार भी उनके साथ विचरण करते थे । ज्ञान-वितरण की प्राचीन परम्परा का अनुसरण करते हुए उन्होंने गुरु की भूमिका स्वीकार की। केवल निष्ठावान और विनयपूर्वक आगत साधकों को वे वेदान्त और योग का तत्त्वोपदेश करते थे। अलर्क, प्रह्लाद, यदु और कार्तवीर्य उनके शिष्य थे।

दत्तात्रेय के उपदेश अवधूत गीता में प्राप्त होते हैं, इसे दत्त गीता भी कहा जाता है। इसमें अवधूत दत्तात्रेय वेदान्त के सर्वोच्च सिद्धान्तों का बिना किसी दुविधा अथवा समझौते से निर्भयतापूर्वक उद्घोष करते हैं –

हे मन ! तुम किसलिए रुदन करते हो, जन्म-मृत्यु, बन्धन-मोक्ष और शुभ-अशुभ – ये तुम्हारे नहीं हैं...मैं सच्चिदानन्द स्वरूप व्योमवत् असीम हूँ ।

विष्णु के अवतार होने के कारण दत्तात्रेय की अनेक मन्दिरों में पूजा-अर्चा होती है। उनसे सम्बन्धित अनुष्ठान मन को उन्नत और प्रसन्न करते हैं। योगीजन भी उनकी पूजा-प्रार्थना करते हैं। ऐसी दृढ़ धारणा है कि वे कृपापूर्वक आध्यात्मिक साधकों के योग-विघ्न दूर करते हैं एवं उनकी सहायता करते हैं। **(क्रमश:)**

रामकृष्ण संघ के संन्यासियों का दिव्य जीवन (९)

स्वामी भास्करानन्द

(रामकृष्ण संघ के महान संन्यासियों के जीवन की प्रेरणाप्रद प्रसंगों का सरल, सरस और सारगर्भित प्रस्तुति स्वामी भास्करानन्द जी महाराज, मिनिस्टर-इन-चार्ज, वेदान्त सोसायटी, वाशिंग्टन ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'Life in Indian Monasteries' में किया है। 'विवेक ज्योति' के पाठकों हेतु इसका हिन्दी अनुवाद रामकृष्ण मठ, नागपुर के ब्रह्मचारी चिदात्मचैतन्य ने किया है। – सं.)

एक अन्य घटना है। ब्रह्मचारी प्रह्लाद महाराज ने अपने संन्यास जीवन का अधिकांश समय बेलूड़ मठ में व्यतीत किया था। वे रामकृष्ण संघ के द्वितीय संघाध्यक्ष श्रद्धेय स्वामी शिवानन्द जी महाराज के शिष्य थे। ब्रह्मचारी प्रह्लाद महाराज संगीत के क्षेत्र में प्रतिभाशाली थे। उनकी इस प्रतिभा को जानकर उनके गुरु स्वामी शिवानन्द जी महाराज ने उन्हें उत्तर प्रदेश में नए आरम्भ हुए संगीत विद्यालय में उच्च शिक्षा लेने के लिए भेजा। अन्तिम वर्ष सत्र समाप्त होने पर, जब वे उपाधि के लिए परीक्षा देने वाले थे, तभी स्वामी शिवानन्द जी महाराज ने उन्हें बेलूड़ मठ वापस बुला लिया। उन्होंने कहा, ''तुम्हें उपाधि (डिग्री) की कोई जरूरत नहीं है। तुम अब संगीत अच्छी तरह सीख गये हो। अब तुम आकर अपनी प्रतिभा से ईश्वर की सेवा करो।''

स्वामी शिवानन्द

बेलूड़ मठ में आने के बाद ब्रह्मचारी प्रह्लाद महाराज को संध्या आरती के प्रधान गायक के रूप में संचालन करने के लिए कहा गया। प्रतिदिन संध्या समय बेलूड़ मन्दिर में होने वाली इस आरती में बहुत से साधु एवं भक्त उपस्थित रहते थे। महाराज आवश्यकता पड़ने पर एकल गायन भी करते थे। इसके अलावा वे इच्छुक कनिष्ठ साधुओं को संगीत की शिक्षा भी देते थे।

महाराज ने सम्पूर्ण जीवन गुरु की आज्ञा का पालन किया। वृद्धावस्था में अस्वस्थ्य होने के कारण उन्होंने अवकाश ले लिया और केवल विशेष अवसर पर ही गाते थे। परवर्ती काल में उन्हें कुछ हृदय-सम्बन्धी रोग हो गए। एक समय आया कि उन्हें बिस्तर पकड़ना पड़ा। एक दिन सुबह डॉक्टर महाराज ने हम सबको सूचित किया कि प्रह्लाद महाराज के हृदय की अवस्था बहुत ही खराब हो चुकी है और वे कभी भी शरीर-त्याग कर सकते हैं ।

यह सुनने के बाद हम लोग प्रह्लाद महाराज को देखने के लिए साधु-निवास में गये। महाराज भजन सुनना पसन्द करते थे, इसलिये कुछ अच्छे गायक साधु उनके कमरे में बैठकर पहले से ही भजन गा रहे थे। यद्यपि महाराज शय्याग्रस्त थे, लेकिन प्रसन्न तथा सजग थे। चिकित्सक ने पुन: परीक्षण करने के बाद भण्डारी महाराज को सूचित किया, ''ठाकुर को दोपहर का भोग जल्दी निवेदित कर साधुओं को शीघ्र ही भोजन करा दिया जाए। विलम्ब करने से समस्या हो सकती हैं, क्योंकि प्रह्लाद महाराज का दो-तीन घण्टों में देहावसान होने वाला है।''

यह सुनने के बाद प्रह्लाद महाराज ने चिकित्सक से कहा, ''जल्दी करने की कोई जरूरत नहीं है। मैं इतनी जल्दी मरने वाला नहीं हूँ। मैं अपराह्न तक जीवित रहूँगा।'' प्रह्लाद महाराज ने बिल्कुल ठीक कहा था। उन्होंने अपराह्न में शान्तिपूर्वक शरीर-त्याग कर दिया।

श्रीकान्त महाराज बेलूड़ मठ में हमारे धर्मार्थ चिकित्सालय में औषधि-वितरण की सेवा करते थे। महाराज भगवान श्रीकृष्ण के भक्त थे। बेलूड़ मठ में रास-पूर्णिमा के अवसर पर श्रीमद्भागवत पर प्रवचन होता है। जिन्हें शास्त्रों का अच्छा ज्ञान होता है, उनमें से कोई एक विद्वान संन्यासी इस विषय पर प्रवचन देते हैं। श्रीमद्भागवत में अन्य प्रसंगों के साथ भगवान श्रीकृष्ण के दिव्य-जीवन का भी वर्णन प्राप्त होता है। प्रवचन सुनने के लिए बहुत से संन्यासी एवं भक्त आते थे। श्रीकान्त महाराज साधारणत: पहली पंक्ति में बैठते थे एवं आँखे बन्द करके बड़े ध्यान से प्रवचन सुनते थे। मैं प्राय: देखता कि प्रवचन सुनते-सुनते भक्ति-भावावेश में उनकी आँखों से आँसू बह रहे हैं।

महाराज लोक-व्यवहार की दृष्टि से मिलनसार साधु नहीं थे। वे स्पष्टवादी थे एवं अप्रिय सत्य बातों को भी कह देते थे। वृद्ध होने के बावजूद भी महाराज का स्वास्थ्य अच्छा था। महाराज एक दिन बहुत रात में अपने कमरे से बाहर आये तथा बाहर खुले बरामदे के फर्श पर बैठ गये। वे बरामदे की दीवार के सहारे बैठकर भगवान के नाम का जप करने लगे। स्वामी अजपानन्द जी ने इसे देखा और महाराज के पास जाकर पूछा, ''महाराज, आपका स्वास्थ्य तो ठीक है

न? आप फर्श पर ऐसे क्यों बैठे हैं?''

श्रीकान्त महाराज ने कोई उत्तर नहीं दिया। वे बारम्बार 'हरि बोल' की आवृत्ति कर रहे थे। इसके बाद वे अचानक गिर पड़े और अन्तिम साँस ली।

स्वामी असीमानन्द और एक भैरवी

यह घटना रामकृष्ण मठ एवं मिशन के मुख्यालय बेलूड़ मठ में घटी थी। एक दिन दोपहर में एक वरिष्ठ संन्यासी स्वामी असीमानन्द जी महाराज (१८८३-१९७६) प्रतिदिन की भाँति मुख्य कार्यालय के सामने बेंच पर बैठे हुए थे। स्वामी असीमानन्द जी महाराज विद्वान होने के साथ-साथ शान्त और बालसुलभ सरल थे। उनके इन्हीं गुणों के कारण सभी लोग उन्हें प्रेम एवं सम्मान करते थे।

एक दिन महाराज के पास ४० वर्षीय मुक्त-लम्बे केशोंवाली एक परिव्राजक भैरवी आयी। उसके हाथ में त्रिशूल था। महाराज को प्रणाम करने के बाद उसने कहा, ''महाराज, क्या मैं आपसे एक प्रश्न पूछ सकती हूँ?''

स्वामी असीमानन्द जी महाराज ने बिना कुछ कहे सिर हिलाकर सहमति दी। भैरवी ने अध्यात्म के विषय में उनसे लम्बा प्रश्न पूछना आरम्भ किया । महाराज ने अपनी स्वाभाविक सरलता से कहा, ''माँ, तुम अपने प्रश्न का उत्तर स्वयं क्यों नहीं देती?''

इसके बाद भैरवी ने अपने त्रिशूल की ओर देखा। उसने त्रिशूल को 'ॐकार' नाम से सम्बोधित कर पूछा – ''ॐकार मुझे उत्तर देना चाहिए या तुम्हें उत्तर देना चाहिए?''

उसका उत्तर जो केवल वह सुन सकती थी, उसको सुनने के बाद उसने कहा, ''अच्छा, तुम चाहते हो कि मैं उत्तर दूँ, ठीक है।'' तत्पश्चात् उसने अपने ही प्रश्न का विस्तारपूर्वक उत्तर दिया। उत्तर देने के बाद उसने महाराज से कहा, ''महाराज, क्या मैं आपसे एक और प्रश्न पूछ सकती हूँ?''

महाराज ने पुन: सिर हिलाकर अपनी सहमति दी। भैरवी ने अध्यात्म के विषय में एक और अत्यधिक जटिल प्रश्न महाराज से पूछा। महाराज ने उत्तर में पुन: कहा, ''माँ, तुम अपने प्रश्न का उत्तर स्वयं क्यों नहीं देती?''

भैरवी ने पुन: अपने त्रिशूल 'ॐकार' की ओर मुड़कर पूछा, ''ॐकार मैं उत्तर दूँ या तुम दोगे?''

थोड़ी देर रुककर उसने कहा, ''अच्छा, तुम चाहते हो, पुन: मैं ही उत्तर दूँ।'' तत्पश्चात् भैरवी ने अपने प्रश्न का विश्लेषणात्मक उत्तर दिया। अपने प्रश्न का स्वयं उत्तर देने के बाद भैरवी ने प्रसन्नतापूर्वक महाराज को प्रणाम करके कहा, ''महाराज, धन्यवाद ! वास्तव में आपने मेरी बहुत सहायता की।'' महाराज से वार्तालाप कर सन्तुष्ट हो वह चली गयी। स्वामी असीमानन्द जी महाराज वहीं शान्तिपूर्वक बैठे रहे।

रामकृष्ण संघ के सह-महासचिव स्वामी शाश्वतानन्द जी महाराज दूर से यह सब देख रहे थे। उन्होंने बाद में हमें इस घटना के बारे में बताया।

स्वामी गम्भीरानन्द जी महाराज के संस्मरण

मैंने बेलूड़ मठ, प्रधान कार्यालय में स्वामी गम्भीरानन्द जी महाराज के साथ सुमधुर दस वर्ष बिताये। मैंने उन्हें सुबह-शाम क्षण-क्षण देखा। महाराज जिस कार्यालय भवन में रहते थे मैं भी उसी में अनेक वर्षों तक रहा। यदि आप किसी व्यक्ति के साथ घनिष्ठ रूप में जुड़ते हैं, तो जैसे-जैसे समय बीतता जाता है, वैसे-वैसे उस व्यक्ति के प्रति आपकी श्रद्धा कम होती जाती है, लेकिन जैसे-जैसे मेरी स्वामी गम्भीरानन्द जी महाराज से घनिष्ठता बढ़ती गई, वैसे-वैसे उनके प्रति मेरी श्रद्धा बढ़ती गयी।

स्वामी गम्भीरानन्द

संन्यासी की महानता उसके बड़े कार्यों की अपेक्षा छोटे कार्यों में अधिक प्रकट होती है। मुझे मालूम था कि स्वामी गम्भीरानन्द जी महाराज कुशल प्रशासक, महान विद्वान, अच्छे लेखक तथा प्रभावशाली वक्ता थे। इसके साथ वे एक महान तपस्वी संन्यासी थे, जो कम सुविधाओं में जीवन व्यतीत करते थे। किन्तु मैं जिनसे प्रभावित हुआ, वे उनके जीवन की छोटी परन्तु महत्त्वपूर्ण घटनाएँ हैं, जिनका मैं आपके समक्ष उल्लेख करने जा रहा हूँ। **(क्रमशः)**

आदर्श को पकड़े रहो । आगे बढ़ते चलो । छोटी-छोटी बातों और भूलों पर ध्यान मत दो । हमारी इस रणभूमि में भूलों की धूल तो उड़ेगी ही । जो इतने कोमल हैं कि धूल सहन नहीं कर सकते, उन्हें पथ से बाहर चले जाने दो ।

– स्वामी विवेकानन्द

स्वामी विवेकानन्द की भारतीय शिक्षा पद्धति

स्वामी अलोकानन्द

पूर्व प्राचार्य, वेद विद्यालय, बेलूड़ मठ

प्राचीन भारत में शिक्षा-व्यवस्था

वैदिक युग में मनुष्य का जीवन ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास-इन चार आश्रमों या चरणों में विभक्त था। ब्रह्मचर्य आश्रम या छात्र जीवन प्राथमिक स्तर था। इसमें सभी बालक गुरुकुल में रहकर शिक्षा ग्रहण करते थे। साधारणतया ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य, तीनों वर्णों का वेदों पर अधिकार था। आठवें वर्ष में उपनयन संस्कार होने के बाद वे लोग गुरुकुल में चले जाते थे। बारह वर्ष गुरुकुल में रहकर वे नैतिक, बौद्धिक, व्यावहारिक सब प्रकार की शिक्षा ग्रहण करते थे।

इस शिक्षा को ग्रहण करने के लिये उनमें कुछ गुणों का होना आवश्यक था। जैसे उन्हें शान्तः, दान्तः, उपरतः, तितिक्षुः, एवं श्रद्धालु तथा विनम्र होना आवश्यक था। गुरुकुल में वे सारा दैनन्दिन कार्य स्वयं ही करते थे। इससे उनका व्यावहारिक ज्ञान बढ़ता था। साथ-साथ वे आध्यात्मिक साधना, एकाग्रता की साधना करते थे, जो उन्हें अध्ययन किए हुए विषयों को गहराई में ले जाने में सहायता करता था। पुस्तकीय ज्ञान हमारे जीवन में प्रतिष्ठित नहीं हो पाता। 'पोथी पढ़ तोता भयो, पंडित भयो न कोय।' 'पंडित' शब्द से हम विश्वविद्यालय की बड़ी-बड़ी उपाधियों वाले व्यक्तियों को समझते हैं, किन्तु वह तो केवल शब्दों का बाहरी ज्ञान है। वास्तविक ज्ञान उससे नहीं होता, सच्ची विद्या उससे नहीं होती। उसके लिए तत्त्व की गहराई में जाना पड़ता है। उस ज्ञान की प्राप्ति हेतु आत्मविकास की साधना, अन्तर्निहित पूर्णता को विकसित करने की साधना की आवश्यकता है। प्राचीन काल में गुरुकुल-वास करके, गुरु के ज्वलंत त्याग-वैराग्यमय जीवन, आध्यात्मिक सुगन्ध से परिपूर्ण जीवन को प्रत्यक्ष देखकर, 'कथनी-करनी में एकरूपता वाले' गुरु की शिक्षा से शिक्षित होकर वे लोग ज्ञानी, और विद्वान, पंडित हुए। प्राचीन भारत में हम उपमन्यु, आरुणि, नचिकेता और सत्यकाम आदि के जीवन में इस आदर्श शिक्षा का प्रतिबिम्ब देखते हैं। हम यहाँ कुछ का उदाहरण प्रस्तुत करते हैं –

आज्ञाकारी शिष्य आरुणि की कथा

बहुत पहले की बात है। परीक्षित के पुत्र जनमेजय का शासन काल था। उस समय 'आयोदधौम्य' नामक कोई एक ऋषि थे। उपमन्यु, आरुणि एवं वेद नामक उनके तीन शिष्य थे। यद्यपि वे सब गुरुकुल में विद्यार्थी थे, तथापि उस परिवार के ही अंग थे। इसलिए वे गुरु के परिवार के सभी कार्यों को अपना कार्य समझकर करते थे। वर्तमान काल में संस्थागत शिक्षा में इस अपनत्व का अभाव दीखता है। इसीलिए देखा जाता है कि छात्र अपने शिक्षा-संस्थान की विविध प्रकार की क्षति करने में नहीं हिचकते। यद्यपि हम सर्वत्र ऐसा सुनते हैं, 'देश हमारा है, देश की रक्षा करने का उत्तरदायित्व हमारा है।' किन्तु व्यवहार में उस देश की सम्पत्ति से अपने स्वार्थ की पूर्ति करने में लगे हुए हैं। कार्य करते समय 'तेरा-मेरा' का स्वार्थमय आचरण करते हैं और यथासम्भव काम न करके पारिश्रमिक लेना आदर्श बन गया है। इसका मूल कारण है शिक्षा की आदर्शगत त्रुटि – लोगों को आदर्श शिक्षा से अवगत नहीं कराना। इसीलिए आज हमें एक बार अतीत की ओर मुड़कर देखना होगा।

आयोदधौम्य ने एक दिन शिष्य आरुणि से कहा, 'वत्स खेत की मेंड़ की दरार से जल बह जा रहा है। तुम जाओ, मेड़ बाँधकर जल-रक्षा की व्यवस्था करो।' गुरु के आज्ञाकारी और श्रद्धावान आरुणि तत्काल उस कार्य के लिये चले गए। किन्तु वहाँ जल के प्रबल वेग को बहुत प्रयत्न करके भी मेड़ बनाकर रोक नहीं सके। अत्यन्त दुखी होकर वे मन-ही-मन सोचने लगे, जैसे भी हो यह कार्य करना होगा। इसलिए वे उस टूटी मेड़ की जगह स्वयं लेट गए। उनके लेटने से जल का प्रवाह रुक गया, किन्तु उन्हें उस स्थान पर लेटे ही रहना पड़ा। उधर गुरु ने देखा कि बहुत समय बीत जाने पर भी आरुणि वापस नहीं आया। इसलिए वे अन्य शिष्यों को लेकर उस जगह पर जाकर पुकारने लगे, 'आरुणि, तुम कहाँ हो? आओ, वत्स !' गुरु की पुकार सुनकर आरुणि ने वहीं से पुकारा, गुरुजी मैं यहाँ हूँ। गुरुजी ने वहाँ जाकर आरुणि को जिस अवस्था में देखा, वे उसकी गुरुभक्ति पर मुग्ध हो गए। उन्होंने आरुणि से सभी घटनाएँ सुनीं। आरुणि ने गुरुजी से अग्रिम आदेश की प्रार्थना की। गुरुजी ने आरुणि की गुरुभक्ति से प्रसन्न होकर कहा, ''क्योंकि तुम मेंड़ को तोड़कर खड़े हुए हो, इसीलिए तुम उद्दालक नाम से प्रसिद्ध होगे।'' इसके बाद

प्रसन्न गुरुजी ने श्रद्धावान शिष्य को आशीर्वाद दिया – **यस्माच्च त्वया मद्वचनमनुष्ठितं तस्मात् श्रेयोऽवाप्स्यसि, सर्व एव ते वेदाः प्रतिभास्यन्ति, सर्वाणि च धर्मशास्त्राणि इति।**' अर्थात् जब तुमने मेरी आज्ञा का पालन किया है, इसलिए तुम श्रेय को प्राप्त करोगे, तुम्हारा मंगल होगा और सम्पूर्ण वेद और धर्मशास्त्र तुम्हारे चित्त में प्रकाशित होंगे।

वेदान्त दर्शन में कहा गया है – 'गुरूपदिष्ट शास्त्रवाक्येषु विश्वासः श्रद्धा'– गुरु के द्वारा उपदेश दी गई वाणी में विश्वास करना श्रद्धा है। साधनचतुष्टय में वेदान्तशास्त्र के अधिकारी होने के लिये इस श्रद्धा को आवश्यक बताया गया है। यही श्रद्धा गुरु को संतुष्ट, प्रसन्न करती है। इसी श्रद्धा के कारण आरुणि के मन में वंशगत, जातिगत कोई भी अभिमान नहीं था। इसीलिए गुरु के आदेश से वह उस कार्य में स्वप्रेरणा से सम्पूर्ण अन्तःकरण से स्वयं को लगा सका था। इसके परिणामस्वरूप उसने गुरुजी से सभी विद्याओं के प्रज्ञालोक को प्राप्त किया। प्राचीन भारत की इसी श्रद्धा का गुणगान करते हुए ऋग्वेद कहता है – **श्रद्धां प्रातर्हवामहे। श्रद्धां मध्यन्दिनं परि। श्रद्धां सूर्यस्व निम्रुचि। श्रद्धे श्रद्धापयेह नः।** (२०वाँ मण्डल, १५१/५) अर्थात् 'प्रातःकाल श्रद्धा को हम आहुति प्रदान करते हैं। श्रद्धा सूर्य की शक्ति है। हे श्रद्धा ! हमें श्रद्धावान बनाओ।'

उपमन्यु की कथा

आयोदधौम्य के दूसरे शिष्य की कथा सुनने में आती है। उपमन्यु के गुरुकुल जाने पर गुरुजी ने उससे कहा, ''उपमन्यु जाओ ! मेरी इन गायों की देख-भाल करो।' उपमन्यु भी गुरु के आदेशानुसार दिन भर गायों को मैदान में चराकर सायंकाल गुरुकुल में आकर गुरुजी को प्रणाम करता था। गुरुजी ने पूछा, ''वत्स उपमन्यु ! तुम तो बहुत मोटे हो गए हो। तुम्हारा जीवन-निर्वाह कैसे होता है? उपमन्यु ने कहा, 'गुरुदेव, मैं भिक्षा में प्राप्त अन्न से जीवन-निर्वाह करता हूँ।' गुरुजी ने कहा, 'मुझे अर्पण करने के पहले भिक्षा में प्राप्त भोजन को ग्रहण मत करना।''

उपमन्यु ने आज्ञा शिरोधार्य कर भिक्षा में प्राप्त भोजन को लाकर गुरु को निवेदित किया। गुरुजी ने भिक्षाप्राप्त सारा भोजन ले लिया।

कुछ दिनों बाद उपमन्यु ने शाम को गुरुजी को प्रणाम किया। उसके स्थूल शरीर को देखकर गुरुजी ने पूछा, ''वत्स ! मैं तो तुम्हारा भिक्षाप्राप्त सारा भोजन ले लेता हूँ, अब तुम कैसे जीवन-निर्वाह करते हो?

उपमन्यु ने उत्तर दिया, ''गुरुदेव, भिक्षा में प्रथम बार प्राप्त भोजन आपको देकर मैं दूसरी बार भिक्षा लेता हूँ और उसी से जीवन-निर्वाह करता हूँ।'

गुरुजी ने कहा, ''यह दुबारा भिक्षाग्रहण करना ठीक नहीं है। क्योंकि एक तो तुम इससे दूसरे भिक्षाजीवियों की भिक्षा में बाधा पहुँचाते हो, दूसरा उससे तुम्हारा लोभ बढ़ता जा रहा है।''

उपमन्यु ने गुरुजी की आज्ञा स्वीकार कर ली और नमस्कार कर पूर्ववत गो-सेवा करने लगा।

कुछ दिन बाद उसे हृष्ट-पुष्ट देखकर गुरुजी ने पूछा, 'वत्स तुम किस प्रकार जीवन-निर्वाह करते हो?'

उपमन्यु बोला, ''गुरुदेव, मैं गाय के दूध से ही जीवन-निर्वाह कर लेता हूँ।'

गुरुजी ने कहा, ''वत्स, यह तो बड़ा अन्याय है। मेरी अनुमति के बिना तुम्हारे द्वारा दूध ग्रहण करना अनुचित है।''

उपमन्यु ने विनम्रता से कहा, ''अच्छा, ऐसा ही होगा।'' कुछ दिनों बाद पुनः गुरुजी के पूछने पर उपमन्यु ने कहा, ''गुरुदेव, अब मैं गाय के बछड़ों द्वारा दूध पीते समय गिर रहे फेन को पीता हूँ।'

गुरुजी ने कहा, 'यह बड़ा अन्याय है। तुम गाय के बछड़ों के जीवन-निर्वाह में विघ्न पैदा कर रहे हो।''

उपमन्यु विनीत भाव से आज्ञा शिरोधार्य कर गुरुजी से विदा लेकर चला गया।

अब तो जीवन-निर्वाह के सारे मार्ग बन्द थे। किन्तु शरीर-धर्म के कारण उपमन्यु भूख से पीड़ित हो गया। गुरुदेव की आज्ञा का उल्लंघन तो वह कर नहीं सकता था। किन्तु जीवन-निर्वाह के लिए कुछ तो ग्रहण करना होगा। इसलिए उसने वन में भूख से कातर होकर कुछ नमकीन, तिक्त, कड़ुवा तथा बेस्वाद कन्द-मूल और पत्तों के रस को ग्रहण कर लिया। इससे वह अन्धा हो गया। उसी स्थिति में भटकते-भटकते वह एक कुएँ में गिर पड़ा।

इधर गुरुजी ने देखा कि उपमन्यु अब नहीं आता। उन्होंने सोचा कि निश्चय ही उपमन्यु में अभिमान आ गया है। इसीलिए शिष्यों को साथ लेकर वे जंगल में चले गए और चिल्लाकर पुकारने लगे, 'उपमन्यु ! तुम कहाँ हो? आओ वत्स !'

आचार्य की आवाज सुनकर कुएँ में से ही उपमन्यु

बोला, 'भूख की ज्वाला से पीड़ित होकर मैंने कन्द का पत्ता खाया था। उसके कारण अन्धा होकर मैं इधर-उधर भटकते हुए इस कुएँ में गिर पड़ा हूँ।'

गुरुदेव ने उपमन्यु से देवलोक के चिकित्सक अश्विनीकुमारद्वय की स्तुति करने को कहा। उस स्तुति से प्रसन्न होकर अश्विनीकुमारों ने आकर उसकी नेत्रज्योति लौटा दी और वर दिया, '**श्रेयश्चावाप्स्यसि**' – 'तुम श्रेय को प्राप्त करोगे।'

उपमन्यु ने गुरुजी के पास आकर सब बातें बताई। गुरुजी ने प्रसन्न होकर उसे आशीर्वाद देकर कहा, ''**सर्वे च ते वेदा: प्रतिभास्यन्ति सर्वाणि च धर्मशास्त्राणि**।'' अर्थात् समस्त वेद और सारे धर्मशास्त्र तुम्हारे मन में प्रकट होंगे।

मृत्यु के भय का परित्याग कर गुरुदेव की वाणी में विश्वास रखने के कारण उपमन्यु ने श्रेय को प्राप्त किया और भावी पीढ़ियों के लिए गुरु-वचनों में विश्वास का एक उज्ज्वल दृष्टान्त प्रस्तुत किया। **(क्रमश:)**

पृष्ठ ४२५ का शेष भाग

आए। उस समय सी. वी. रामन वहाँ का कार्यभार देख रहे थे। वे साराभाई के परिवार को पहले से ही जानते थे। विक्रम के पिता अम्बालाल ने उनको पत्र लिखकर अपने बेटे को विद्यार्थी के रूप में ग्रहण करने की विनती की।

विक्रम साराभाई ने प्रकाश तरंगों से सम्बन्धित अनके खोजपरक प्रयोग किए थे। उनक प्रथम शोधपरक पत्रक उन्होंने १९४२ में इंडियन एकेडेमी ऑफ साइन्स के सामने प्रस्तुत किया था। उनके बारे में सी. वी. रामन ने कहा था, 'मुझे विश्वास है कि भारत और विज्ञान के क्षेत्र में विक्रम का महान योगदान होगा।'

उन्होंने अपने पिता के कपड़े से सम्बन्धित कारखानों में अनेक संशोधित कार्य किए। इसके साथ ही उन्होंने दवाइयों के कारखानें भी खोले। उस समय विदेशी दवाइयों की कंपनियाँ ही भारत में दवाएँ बनाती थीं। उन्होंने इस क्षेत्र में अनेक निष्णात लोगों के साथ कार्य कर इस क्षेत्र को आगे बढ़ाया। उनका सबसे बड़ा योगदान था अंतरिक्ष विज्ञान में विश्व के सामने भारत की धाक जमाना। इसके अलावा प्रसिद्ध शैक्षणिक संस्था 'इंडियन इन्स्टिट्यूट आफ मैनेजमेन्ट, अहमदाबाद' और अन्य शैक्षणिक एवं शोध संस्थानों की स्थापना में उनका महत्त्वपूर्ण योगदान था। OOO

बीती बातें बीते पल

धन्य थी वह शिष्या !

स्वामी वीरेश्वरानन्द जी महाराज रामकृष्ण संघ के दशम संघाध्यक्ष थे। बेलूड़ मठ में उत्सव के समय अनेक भक्त पंक्तिबद्ध होकर उन्हें प्रणाम कर रहे थे। उसमें एक वृद्ध विधवा भक्त किसी गाँव से आई थीं। उनके आँचल के छोर में कुछ बँधा हुआ था। पंक्ति में लगकर उन्होंने महाराज को प्रणाम किया और अपने आँचल के छोर से एक छोटा-सा पैकेट निकालकर महाराज को देने का प्रयास किया। महाराज ने जानना चाहा कि उसमें क्या है? सेवक महाराज सामने ही उपस्थित थे। उन्होंने पैकेट दिखाकर कहा कि यह ५० ग्राम चायपत्ती का पैकेट है। पूजनीय महाराज ने उन वृद्ध भक्त महिला से एक ओर बैठने को कहकर सेवक महाराज से जल्दी से चाय बनाकर लाने को कहा। पंक्तिबद्ध होकर लोग प्रणाम किए जा रहे थे। थोड़ी ही देर में सेवक महाराज एक कप चाय बनाकर ले आए और पूजनीय महाराज के हाथ में दिया। महाराज बड़ी करुणापूर्ण दृष्टि के साथ हँसते हुए परम तृप्ति के साथ उसे पीने लगे। उन वृद्धा के दोनों कपोलों से आनन्दाश्रु झरने लगे। वह एक दिव्य दृश्य था! धन्य थी वह शिष्या ! किसी अनजाने गाँव से आकर गुरुसेवा करके वह धन्य हो गई थी।

स्वामी वीरेश्वरानन्द जी बहुत अल्पाहारी थे। बेलूड़ मठ में रहते समय अपनी दिनचर्या के अनुसार वे बहुत ही कम खाते थे। एकबार वे पटना आश्रम में इच्छुक भक्तों को दीक्षा प्रदान करने गए। वहाँ प्रतिदिन १५-२० भक्त उनके लिए भोजन पकाकर ले आते। व्यंजन कितने भी हों, चाहे २५ अथवा ५०, चाहे कितना भी तेल-घी-मिर्च हो, पूजनीय महाराज हर एक को चखते थे। सेवकगण उनसे कहते, ''आपको जो अच्छा लगे, वही खाइए। सबको चखने की क्या आवश्यकता है?'' किन्तु महाराज नहीं मानते और कहते, ''वे लोग कितने परिश्रम से पकाकर ले आए हैं। तुम लोग केवल खाना ही क्यों देख रहे हो? जिस मनोभाव के साथ उन्हें बनाया गया है, उस भाव का अनुभव करो।''

OOO

आधुनिक मानव शान्ति की खोज में (१)

स्वामी निखिलेश्वरानन्द
सचिव, रामकृष्ण मिशन, वड़ोदरा

आधुनिक मानव शान्ति की खोज में भटक रहा है। विज्ञान और तकनीक के क्षेत्र में मानव ने असाधारण प्रगति की है। अद्भुत कम्प्यूटर, रोबोट का निर्माण किया है, अन्तरिक्ष में भी नई-नई खोज कर रहा है, चन्द्रमा की धरती पर पैर रख चुका है, मंगल ग्रह पर अंतरिक्षयान भेजकर वहाँ की जानकारी ले रहा है, नये-नये अद्भुत वैज्ञानिक प्रयोग वह सभी क्षेत्रों में सफलतापूर्वक कर रहा है। फिर भी एक बात की कमी के कारण मानव दुखी है और वह है शान्ति।

मनुष्य आज अपने घर की बैठक के सोफे पर बैठकर किसी भी देश में, किसी भी व्यक्ति के साथ एक सेकण्ड में सम्पर्क कर सकता है, ऐसी अद्भुत क्रान्ति 'कॉम्युनिकेशन टेक्नॉलाजी' से आ गई है। ई-मेल, साईबर स्पेस, इन्टरनेट आदि के द्वारा वह समस्त विश्व की अद्यतन जानकारी अपने घर में बैठकर प्राप्त कर रहा है, पर विडम्बना यह है कि एक ही सोफे पर बैठे हुए पति-पत्नी, भाई-भाई या सास-बहु के बीच कोई कॉम्युनिकेशन नहीं है, संवाद नहीं है।

आज के युग में मानसिक तनाव दिन प्रतिदिन बढ़ता ही जा रहा है। कार्य का अत्यधिक बोझ, आर्थिक परेशानी, परिवार में कलह, भविष्य की चिन्ता आदि अनेक कारणों से मानसिक तनाव सतत बढ़ता जा रहा है। इस मानसिक तनाव के कारण घर में, ऑफिस में या कारखाने में अनेक प्रकार की समस्याएँ दिखाई देती हैं। आधुनिक मानव इन समस्याओं का सामना करने के बदले जीवन से भागने लगा है। अर्थात् आत्महत्या के मार्ग पर जा रहा है। जापान में शुरुमी वातारु (Trumi Wataru) की पुस्तक "Kanzen Jisatsu Manual of the coplete Manual of committing Suicide" आत्महत्या के लिये मार्गदर्शन देने वाली पुस्तक बहुत प्रसिद्ध हुई थी। उसकी एक वर्ष में तीन लाख प्रतियाँ बिक गई थीं। इसी प्रकार हेमलोक सोसायटी के संस्थापक हम्फ्री की पुस्तक "The Final Exit" भी अमेरिका में बहुत प्रसिद्ध हुई थी। उसमें आत्महत्या करने के विविध उपाय बताए गये थे। फ्रान्स में आत्महत्या करने वालों के लिये सूचनाएँ देने वाली पुस्तक (Suicide-User's Instructions) 'बेस्ट सेलर' – विख्यात हो गई थी। फ्रान्स में प्रतिवर्ष लगभग एक लाख, पैंतीस हजार लोग आत्महत्या करते हैं।

ऑस्ट्रेलिया में प्रतिवर्ष एक लाख पचास हजार युवक-युवतियाँ आत्महत्या का प्रयास करते हैं और यह संख्या बढ़ती ही जा रही है, क्योंकि ऑस्ट्रेलिया विश्व का प्रथम देश है, जिसने आत्महत्या को कानूनी छूट दे रखी है। यद्यपि यह छूट मृत्युशय्या पर पड़े पीड़ित रोगियों के लिये है। विश्व में प्रतिदिन डेढ़ हजार से अधिक लोग आत्महत्या करते हैं, पिछले दो दशकों में आत्महत्या की संख्या में वृद्धि हुई है। जिन देशों में अनुमानत: वार्षिक आय की बहुत वृद्धि हुई है, ऐसे विकसित देशों में आत्महत्या की दर भी बढ़ी है। आत्महत्या करने की ओर मनुष्य क्यों प्रेरित होता है? इसके कारणों के बारे में सोचें, तो लगता है कि आधुनिक मानव की आवश्यकताएँ बढ़ गई हैं और साथ ही उसकी महत्वाकांक्षाएँ भी बढ़ गई हैं। इन आवश्यकताओं और महत्वाकांक्षाओं को पूरा करने के लिये वह अत्यधिक भाग-दौड़ करता है, पर्याप्त आराम भी नहीं करता है, इससे स्वास्थ्य बिगड़ जाता है, मानसिक अशान्ति और तनाव बढ़ता जाता है और अन्त में वह आत्महत्या करने की ओर प्रेरित होता है। अमेरिका और जापान जैसे आर्थिक दृष्टि से समृद्ध देशों में भारत की तुलना में आत्महत्या की संख्या बहुत अधिक है। 'लंदन स्कूल आफ इकॉनॉमिक्स' ने एक अलग प्रकार का सर्वेक्षण किया था – 'संसार में सबसे सुखी देश कौन-कौन से हैं?' इस सर्वेक्षण का परिणाम बहुत आश्चर्यजनक आया था। जिसमें प्रतिव्यक्ति आय सबसे कम है, ऐसा बांग्लादेश पहले क्रम पर था। जबकि प्रतिव्यक्ति आय जिसकी अधिक पाई गई, ऐसा अमेरिका ४६ वें क्रम पर, ब्रिटेन ३२ वें क्रम पर और भारत पाँचवें क्रम पर था। यह सर्वेक्षण दर्शाता है कि जैसे-जैसे आर्थिक समृद्धि बढ़ती है, वैसे-वैसे सुख नहीं बढ़ता, वरन् प्राथमिक आवश्यकताओं की पूर्ति के बाद कम होता जाता है।

अत्यधिक विकसित देशों के लोग आरामदायक बिस्तर पर सोते हैं, तब भी नींद की गोली लिये बिना उन्हें नींद नहीं आती है। गोलियों की संख्या बढ़ती जाती है, फिर भी नींद कम होती जाती है। मानसिक तनाव से बचने के लिये लोग विभिन्न प्रकार के ड्रग्स का सेवन करने लगे हैं। रॉबर्ट डी रो ने अपनी पुस्तक 'Mind and Medicine' में बहुत सुन्दर बात कहते हैं – आजकल पैसे से सब कुछ खरीद सकते हैं, किन्तु दुख की बात है कि किसी भी केमिस्ट की दुकान में शान्ति का पैकेट नहीं बिकता है।

आजकल तो उद्योग-धन्धों में मन्दी, अन्तर्राष्ट्रीय स्पर्धा, मजदूरों की समस्याओं के कारण भी अशान्ति व्यापक रूप से देखने को मिलती है। मानसिक तनाव के कारण प्रबन्धन के क्षेत्र में भी 'स्ट्रेस मैनेजमेंट' एक महत्त्वपूर्ण विषय हो गया

है। देश-विदेश की अनेक कम्पनियों ने अपने कर्मचारियों, कार्यकर्ताओं और अधिकारियों के लिए मानसिक तनाव दूर करने की कार्यशालाएँ प्रारम्भ की हैं। यह समस्या इतनी विकट है कि 'वुडु डॉल्स' (Voodoo Dolls), 'हेट डायरीज' (Hate Diaries) जैसे कितने ही विचित्र उपाय भी अपना रहे हैं। महिन्द्रा एण्ड महिन्द्रा जैसी कितनी ही कम्पनियाँ इसके लिये अमेरिकन मनोवैज्ञानिक एलिस एलबर्ट द्वारा प्रतिपादित आर.इ.टी. विधि (R.E.T.- Rational Emotive Theory) का उपयोग कर रही हैं। लार्सन एण्ड टुब्रो (L & T), डी.सी.एम. (DCM), एच.पी.सी.एल. (HPCL), बी.एच.ई.एल. (BHEL) आदि अनेक बड़ी कम्पनियाँ इसके लिये ध्यान और योग का सहारा ले रही हैं। वैश्वीकरण होने के बाद गलाकाट स्पर्धा के कारण मैनेजरों का मानसिक तनाव बढ़ रहा है। इन्टरनेशनल सर्वे रिसर्च कॉर्पोरेशन, शिकागो के सर्वेक्षण के अनुसार अब अमेरिका की ४० प्रतिशत कम्पनियाँ स्ट्रेस मैनेजमेंट के लिये नियमित कार्यक्रमों का आयोजन कर रही हैं।

एमस्टरडॅम मैनेजमेंट के कन्सल्टेन्ट एम. आर. थीसन, अनेक कम्पनियों में ध्यान और योग करवा रही हैं। अपनी पुस्तक 'Rhythm of Management' में उन्होंने उस विषय में विस्तृत चर्चा की है।

मानसिक तनाव दूर करने के लिये ध्यान बहुत उपयोगी है। इस विषय में बहुत प्रयोग हो रहे हैं। जापान के मनोवैज्ञानिक श्रीकास्मात्सु और श्रीहीराई ने ई.ई.जी. द्वारा जैन साधुओं के ध्यान करते समय, उनके ध्यान से मस्तिष्क पर होने वाले प्रभावों पर प्रयोग किये। उन्होंने सर्वप्रथम तो १० से १२ c.p.s. (१२ चक्र प्रति सेकेंड) की अल्फा तरंगें देखीं, फिर तरंगों की आवृत्ति घट कर ९ से १० c.p.s. हो गई और बाद में ४ से ७ c.p.s. की थीटा तरंगें दिखाई दीं। थीटा तरंगें चित्त की प्रशान्ति की मात्रा की सूचक हैं। इस प्रकार वैज्ञानिक प्रयोगों के द्वारा सिद्ध होता है कि ध्यान मन को शान्त करने में महत्त्वपूर्ण कार्य करता है।

हॉवर्ड मेडिकल स्कूल के प्रोफेसर डॉ० हर्बट बेन्सन ने प्रयोगों द्वारा प्रमाणित किया है कि ध्यान से मन पर इतना अधिक प्रभाव होता है कि उससे ब्लड प्रेशर कम हो जाता है। इसकी उपलब्धियाँ उन्होंने "The relaxation responses" नामक पुस्तक में प्रकाशित की हैं।

सामान्यरूप से मस्तिष्क को २० प्रतिशत रक्त की आवश्यकता होती है, पर यदि तनाव हो, तो अधिक रक्त की आवश्यकता होती है। मस्तिष्क यह रक्त पेट या मेरुदण्ड के स्नायुओं से ले लेता है। इस कारण अल्सर, रक्तचाप, हृदयरोग, स्पॉन्डलाइसीस आदि रोग हो जाते हैं। डॉ. दीपक चोपड़ा ने अपनी पुस्तक 'The Quantam Healing, The Ageless Body and Timeless Mind' आदि में ध्यान का मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य पर क्या प्रभाव पड़ता है, उसकी रोचक जानकारी दी है।

आधनिक युग में ध्यान-शिविर, योग-शिविर और तनाव दूर करने की कक्षाएँ बढ़ रही हैं, क्योंकि मनुष्य अपने आप को सुरक्षित अनुभव नहीं कर रहा है। सुख-सुविधाओं के उपकरण बढ़ने के बाद भी असुरक्षा की भावना बढ़ती जा रही है। जीवन में निश्चिन्तता और सहजता मनुष्य खोता जा रहा है। बड़े शहरों में तो पति जब शाम को नौकरी से सकुशल घर वापस आ जाता है, तभी पत्नी निश्चिन्त होती है। लोगों का सारा जीवन दुर्घटना, हुल्लड़, मारपीट के भय में ही बीतता है। इसके अलावा भविष्य की चिन्ता भी मनुष्य को खाती रहती है। विद्यार्थियों को इच्छित विद्यालय में प्रवेश मिलेगा या नहीं, पढ़ाई समाप्त होने के बाद अच्छी नौकरी मिलेगी या नहीं, और नौकरी मिलने के बाद बनी रहेगी या नहीं, ये सभी चिन्ताएँ सताती रहती हैं। युवकों को इच्छित साथी मिलने की चिन्ता, प्रौढ़ों को अपनी संतानों को व्यवस्थित करने की चिन्ता, वृद्धों को अपने जीवन की चिन्ता और असुरक्षा का अनुभव निरन्तर सताता रहता है। जिनके पास पैसा है, वे स्वयं को सबसे अधिक असुरक्षित अनुभव करते हैं। धन-सम्पत्ति चले जाने की चिन्ता, गुंडों द्वारा अपहरण की या हत्या का भय और बेचैनी, धनवान लोगों को निरन्तर होती रहती है। सत्ताधीशों को भी सत्ता खोने का डर रहता है, वे इसी भय और चिन्ता में जीते हैं। इस प्रकार छोटे बच्चों से लेकर वृद्धों तक सभी चिन्ताग्रस्त दीखते हैं। स्वस्थता, स्थिरता और शान्ति तो शायद ही कहीं देखने को मिलती है।

पिछले दिनों अहमदाबाद में एक बैंक के दिवाला हो जाने से हजारों निवेशकों का जीवन असुरक्षित हो गया। अत्यधिक परिश्रम से पूँजी संचित की थी और यह सोचकर बैंक में ब्याज के लिये रुपये जमा किये थे कि इससे हमारी वृद्धावस्था आराम से बीत जाएगी। किन्तु वे रुपये भी अब वापस नहीं मिलेंगे, इस चिन्ता से असंख्य लोग दुखी हो गये। इसी प्रकार शेयर बाजार में मंदी आने से कितने ही लोगों के शेयर में निवेश किये गये रुपये डूब गये और कितनों ने ही इस सदमे को सहन नहीं कर सकने के कारण आत्महत्या कर ली। अत: धन पास में होने के बाद भी कोई निश्चिन्तता नहीं है कि धन मनुष्य के काम में आएगा ही। धन-सम्पत्ति, सत्ता, मानव-सम्बन्ध आदि कब छोड़कर चले जाएँगे, यह नहीं कह सकते। इसीलिये आज मनुष्य का जीवन सबसे अधिक असुरक्षित हो गया है, ऐसी स्थिति में मनुष्य को सुख शान्ति कहाँ से मिलेगी? **(क्रमशः)**

चिन्तन और जीवन

भगिनी निवेदिता

(भगिनी निवेदिता की १५० वीं जन्म-जयन्ती के उपलक्ष्य में उनके जीवन और सन्देश से सम्बन्धित यह लेखमाला 'विवेक ज्योति' के पाठकों के लाभार्थ आरम्भ की गई है। – सं.)

हमें धार्मिक उद्भावना की आज पहले की अपेक्षा अधिक आवश्यकता है। धार्मिक उद्भावना से रहित व्यक्तित्व सांसारिक इच्छाओं की प्राप्ति करता है, जबकि उससे युक्त व्यक्तित्व आत्म-त्याग का अनुसरण कर ऐहिक वस्तुओं का त्याग करता है।

अनेक प्रयत्नों के फलस्वरूप मनुष्य में सहज धार्मिक प्रवृत्ति का निर्माण होता है। हमारा जीवन परम तत्त्व के प्रति समर्पित होने की महान प्रक्रिया के विकास में उस अनन्त ईश्वर को अभिव्यक्त करने का प्रयास करता है, पर कर नहीं पाता। किन्तु धार्मिक व्यक्ति इस अभिव्यक्ति की अपेक्षा नाम-रूपात्मक ईश्वर के अवतार – सर्वोच्च ईश्वर को महत्त्व देता है।

धार्मिक प्रवृत्ति का विकास प्रारम्भिक अवस्था से होता है और उसकी परिसमाप्ति ईश्वर में होती है। अनेक व्यक्तियों में इस जन्मजात इच्छा का प्रारम्भ मन और इन्द्रिय के निम्न स्तरों से ऊपर उठकर धार्मिक जीवन जीने के संघर्ष में होता है। यह इच्छा हमें अनन्त लक्ष्य की प्राप्ति की ओर संकेत करती है, जहाँ हमारी आत्मा अग्रसर होना चाहती है। यह वह लक्ष्य-बिन्दु है, जिसे विद्वान व्यक्ति भी प्राप्त करना चाहता है। मनुष्य इच्छा-शक्ति और मन के अभ्यास द्वारा जीवन की इस चरम वस्तु, निर्वाण – मुक्ति – साक्षात्कार को प्राप्त करता है।

विचारों का मूर्त स्वरूप ही व्यक्ति है। भगवद्-गीता के विचारों के मूर्त स्वरूप भगवान श्रीकृष्ण हैं, ऐसे ही उपनिषदों के मूर्त स्वरूप याज्ञवल्क्य और मैत्रेयी आदि हैं। व्यक्ति जितना आदर्श को अभिव्यक्त करता है, उतना ही उससे एकाकार होता है और इस दृष्टि से देखा जाए, तो महान आचार्यगण अवतार स्वरूप हैं, क्योंकि उन्होंने उस आदर्श को अपने जीवन में अभिव्यक्त और आचरित किया, जिसे मानवजाति ने ईश्वर-स्वरूप समझा है। इस दृष्टि से गुरु साक्षात् ईश्वर हैं।

धर्म को स्वाभाविक सत्य के रूप में समझने का प्रयत्न कीजिए। यह युक्ति और अनुभव से कोई पृथक् वस्तु नहीं है, किन्तु इन दोनों का सर्वोच्च विकसित रूप है। जीवन में धर्म कोई अस्वाभाविक वस्तु नहीं, अपितु अत्यन्त स्वाभाविक और सहज है। स्वामी विवेकानन्द कहते थे कि जो वस्तु युक्ति और अनुभव के विरुद्ध हो, उसे यथार्थ धार्मिक नहीं मानना चाहिए। धर्म जीवन की परिपूर्णता है। यह जीवन की नकारात्मक स्थिति नहीं, बल्कि उच्चतम, गहनतम और व्यापक जीवन जीने की सकारात्मक परिणति है।

जीवन एक महानतम शिक्षा है। अनुभव और जीवन-यापन शिक्षक की भूमिका निभाते हैं। व्यक्ति की परख उसके बौद्धिक आयामों से नहीं, अपितु उसकी इच्छाओं की गहनता और उद्देश्य से करनी चाहिए। कोई व्यक्ति शैक्षिक और तकनीकी ज्ञान में मूर्ख हो सकता है, किन्तु अपने विचारों और इच्छाओं की दृष्टि से वह ऋषि हो सकता है।

उस अन्तस्तल तक जाकर उस ज्योति को खोजो जहाँ व्यक्ति जीवन यापन और अनुभव करता है। यह मत देखो कि वह क्या चिन्तन करता है। चिन्तन करना आसान है, किन्तु जीवन जीना श्रमसाध्य है। व्यक्ति की भावनाओं के अनुसार ही हमें उसकी परख करनी चाहिए। इस परिप्रेक्ष्य में यह स्पष्ट होता है कि ईसामसीह, भगवान बुद्ध और श्रीरामकृष्ण केवल अपने उपदेशों के कारण नहीं, किन्तु अपने महान और दिव्य जीवन के कारण आचार्य थे। उनके लिए तथा सभी सन्तों के लिए विचार को जीवन में उतारना धर्म था। यह विचार का जीवन में प्रत्यक्ष होना है, व्यक्तिसापेक्ष का वस्तुसापेक्ष में परिवर्तित होना है।

विचार ही सतत प्रवृत्ति के रूप में परिवर्तित हो रहा है। व्यक्ति के मन की क्रियाओं के पीछे उसकी स्वाभाविक प्रवृत्तियाँ और स्वभाव हैं। मन के सचेतन स्तर के नीचे संस्कारों का प्रबल प्रवाह है और यह आवश्यक है कि हम

शेष भाग पृष्ठ ४४४ पर

हृदय मन्दिर में हैं भगवान

महात्मा हरि सन्तोषानन्द

गीता में भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं –

ज्योतिषामपि तज्ज्योतिस्तमसः परमुच्यते।

ज्ञानं ज्ञेयं ज्ञानगम्यं हृदि सर्वस्य विष्ठितम्।।१३.१७।।

परमात्मा ज्योतियों का भी ज्योति है, अन्धकार से अत्यन्त परे है, बोधस्वरूप है, जानने योग्य है, तत्त्वज्ञान से प्राप्त करने योग्य है और सबके हृदय में विद्यमान है।

परमात्मा का अनुसन्धान मानव करता है, परन्तु जहाँ वह मिलेगा, जहाँ उसका दर्शन होगा, वह वहाँ उसे नहीं खोजता है। जब वास्तविक वासस्थान पर उसका अन्वेषण नहीं होगा, तो उसका दर्शन उसे कैसे होगा? सन्त कबीर का कथन है –

वस्तु कहीं ढूंढ़े कहीं, केहि विधि आवे हाथ।

कबीर वस्तु तब पाइये, जब भेदी लीन्हा साथ।।

भेदी लीन्हा साथ में, दिन्ही वस्तु लखाय।

कोटी जनम का पंथ था, पल में पहुँचा जाय।।

उस परमात्मा के तत्त्वज्ञाता सद्‌गुरु हैं। जिज्ञासु जब उनकी शरण में आता है, तब उसे परमात्मा की प्राप्ति होती है। तत्त्वभेदी ज्ञानी, सद्‌गुरु के द्वारा जिज्ञासु को परमात्म प्राप्ति का मार्ग प्राप्त होता है। जिस परमात्मा की प्राप्ति के लिए अज्ञानी जीव करोड़ों जन्मों तक प्रयत्न करने के बाद भी परमात्मा तक नहीं पहुँच पाता है, ज्ञानी, सद्‌गुरु कृपा कर जिज्ञासु को तत्काल परमात्मा का दर्शन करा देते हैं, शिष्य परमात्मा का साक्षात्कार कर लेता है।

अर्जुन श्रेष्ठ तपस्वी, वेदज्ञ, यज्ञकर्ता तथा दानदाता थे। उन्होंने अपनी तप-साधना से देवों के दर्शन कर अभीष्ट वरदान की प्राप्ति की थी, परन्तु भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन को स्पष्ट रूप से बता दिया कि बाह्य साधनों द्वारा मेरी प्राप्ति और दर्शन सम्भव नहीं है –

नाहं वेदैर्न तपसा न दानेन न चेज्यया।

शक्य एवंविधो द्रष्टुं दृष्ट्वानसि मां यथा।

भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवंविधोऽर्जुन।

ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परन्तप।।११.५३,५४।।

तब प्रश्न उठता है कि भगवान का दर्शन कैसे होगा? भगवान श्रीकृष्ण स्वयं मार्ग बताते हैं –

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।

उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः।।४.३४।।

भगवान कहते हैं, जो साधक श्रद्धापूर्वक सद्‌गुरु के पादपद्मों में दण्डवत प्रणाम कर, उनकी सेवा कर, जब उस परमात्मतत्त्व के जानने की जिज्ञासा करता है, तब वे तत्त्वदर्शी गुरु प्रसन्न होकर उस जिज्ञासु को तत्त्वज्ञान प्रदान करते हैं। परमात्मा सर्वव्यापक, सच्चिदानन्द, परमज्योतिस्वरूप और घटघटवासी हैं। वे सबके हृदय-मन्दिर में ही निवास करते हैं। साधक उनके शरणागत होकर उनकी कृपा से परमशान्ति और परमात्म लोक को प्राप्त करता है, जिसे प्राप्त कर पुनर्जन्म नहीं होता, वही परमात्मा का परम धाम है।

श्रीरामचरितमानस में महर्षि कागभुशुण्डिजी गरुड़जी को सम्बोधित करते हुए कहते हैं –

राम भगति चिंतामनि सुंदर।

बसइ गरुड़ जाके उर अंतर।।

परम प्रकाश रूप दिन राती।

नहिं चहिअ कछु दिया घृत बाती।।

हे गरुड़ ! रामभक्ति रूपी चिंतामणि जिसके हृदय में निवास करती है, उसके हृदय में दिन-रात परम-प्रकाश रूप परमात्मा का दर्शन होता है। उस परम प्रकाश रूप के लिए घृत-बाती आदि की आवश्यकता नहीं है। कागभुशुण्डिजी की वाणी से परम-प्रकाशस्वरूप परमात्मा का वासस्थान सबका हृदय-मंदिर ही सिद्ध होता है।

परमतत्त्व की महिमा का गान उपनिषद भी करती है –

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं

नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः।

तमेव भान्तमनुभाति सर्वं

तस्य भासा सर्वमिदं विभाति।।

(कठ, श्वेता, मुण्डोपनिषद)

उस परमात्मा को सूर्य, चन्द्रमा, तारे और विद्युत प्रकाशित नहीं कर सकते, भला बेचारी यह अग्नि उसे कैसे प्रकाशित कर सकती है। सत्य तो यह है कि परमात्मा के प्रकाश से ही सूर्य, चन्द्र, तारे बिजली और अग्नि आदि प्रकाशित होते हैं। भगवान श्रीकृष्ण गीता में कहते हैं –

न तद्भासयते सूर्यो न शशाङ्को न पावकः।

यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम।। (१५/६)

वहाँ न सूर्य प्रकाशित होता है, न ही चन्द्रमा प्रकाशित

होता है और न वहाँ अग्नि का ही प्रकाश है। जहाँ जाकर जीव वापस नहीं आता अर्थात् आवागमन के चक्र से मुक्त हो जाता है, वही मेरा परमधाम है।

भगवान शंकर भी यही कहते हैं –

सहज प्रकाश रूप भगवाना।
नहिं तहँ पुनि बिज्ञान बिहाना।।
राम सच्चिदानंद दिनेसा।
नहिं तहँ मोह निसा लवलेसा।।
सब कर परम प्रकासक जोई।
राम अनादि अवध पति सोई।।

अर्थात् भगवान सहज प्रकाशस्वरूप स्वयंभू ज्योति हैं, वहाँ विज्ञान का किंचित् भी उजाला नहीं है। राम सच्चिदानन्द स्वरूप सूर्य के सदृश हैं। वहाँ थोड़ी-सी भी मोहरूपी रात्रि नहीं है। अर्थात् वहाँ बिल्कुल भी अज्ञान का अँधेरा नहीं है। जो सबको प्रकाशित करनेवाले परम प्रकाशक परमात्मा हैं, वही अनादि अवधपति भगवान श्रीराम हैं। महात्मा कबीर का कथन है –

सन्तों सो है देश हमारा।
सूर्य चन्द्र तहँ प्रकाशित नाहीं, नहिं नभ मण्डल तारा।।
उदय अस्त दिवस नहिं रजनी, बिन जोती उजियारा।
जहाँ जाय फिर हंस न आवे, भव सागर की धारा।।

वस्तुत: परमात्मा का लोक सदा प्रकाशित रहने वाला उज्ज्वल लोक है। वहाँ सूर्य, चन्द्रमा और तारों के बिना भी सदा परमात्मा का प्रकाश प्रकाशित होता रहता है। सद्गुरु कृपा से अध्यात्म ज्ञान की क्रियात्मक साधना को जानकर साधक ध्यान साधना के सतत अभ्यास के द्वारा मोक्ष का अधिकारी हो जाता है, सद्गति को प्राप्त कर लेता है तथा परमात्मा में तद्रूप हो जाता है। वह सदा-सदा के लिये जन्म-मरण की व्याधि से मुक्त होकर परमानन्दित हो जाता है। ○○○

पृष्ठ ४४२ का शेष भाग

इसका मूल्यांकन करें। चिन्तन आदर्श का वर्णन मात्र है, किन्तु आदर्शानुसार जीवन यापन करना ही उसे अभिव्यक्त करना है। चिन्तन दर्शन है, किन्तु आदर्श अनुरूप जीवन-यापन ही धर्म है और भारत में हमेशा से चिन्तन और जीवन-यापन एक रहा है। पाश्चात्य देशों में ऐसा नहीं है। अनकों के लिए दर्शन और धर्म अलग-अलग वस्तु है। ○○○

पुस्तक समीक्षा

छात्र-जीवन में सफलता

लेखक – स्वामी पुरुषोत्तमानन्द

सम्पादक – स्वामी विदेहात्मानन्द

प्रकाशक – स्वामी ब्रह्मस्थानन्द, अध्यक्ष, रामकृष्ण मठ, धन्तोली, नागपुर – ४४००१२

पृष्ठ – ५२, मूल्य – १५/-

रामकृष्ण संघ के वरिष्ठ संन्यासी स्वामी पुरुषोत्तमानन्द जी महाराज ने छात्रों के लिये अँग्रेजी में 'स्टूडेन्ट ट्रेजर' नामक पुस्तक लिखी थी, जो बहुत लोकप्रिय और छात्रों के सफल जीवन में विशेष सहयोगी है। हिन्दी क्षेत्र के छात्र-छात्राएँ इससे लाभान्वित हों, इसलिये इसका सम्पादन रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर से प्रकाशित होनेवाली विवेक ज्योति के पूर्व-सम्पादक स्वामी विदेहात्मानन्द जी ने किया है।

यह पुस्तक विभिन्न शीर्षकों में विभक्त है। एकाग्रता का रहस्य, एकाग्रता का अभाव क्यों होता है?, एक विद्यार्थी के नाम पत्र, समय का सदुपयोग और प्रार्थना या आत्मसुझाव। इन अध्यायों को पढ़कर छात्र एकाग्रता के निगूढ़ तत्त्वों को जान सकेंगे, अपना आत्मविश्लेषण कर सकेंगे, समस्याओं से कैसे संघर्ष कर विजयी बनें, इस सूत्र को ज्ञात कर सकेंगे और समय का सदुपयोग कर जीवन को सफल बनाएँगें, ऐसी शुभकामना और आशा है।

पुस्तक प्राप्त हुई –

अमृत–सागर

प्रवचनकार – स्वामी सत्यमित्रानन्द गिरिजी महाराज

सम्पादक – प्रो. बालकृष्ण कुमावत, उज्जैन

मोबाइल – ०९२२९५९९०२८

प्रकाशक – समन्वय प्रकाशन, हरिद्वार

पृष्ठ – १७६, सहयोग राशि – ५०/

यह पुस्तक स्वामी सत्यमित्रानन्द जी के प्रवचनों का संग्रह है, जिसमें मानवीय उच्च मूल्यों और आध्यात्मिक आदर्श का उत्कृष्ट प्रतिपादन है। पुस्तक पठनीय और संग्रहणीय है। ○○○

स्वामी गौतमानन्द जी महाराज का छत्तीसगढ़ भ्रमण

रामकृष्ण मठ-मिशन के न्यासी और रामकृष्ण मठ, चैन्नई के अध्यक्ष संघगुरु श्रीमत् स्वामी गौतमानन्द जी महाराज ने छत्तीसगढ़ के जिज्ञासु भक्तों को कृपाकर दीक्षा प्रदान की। उन्होंने १२ मई, २०१६ को रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर में शाम को पदार्पण किया। १३ मई को प्रात: ५.१५ बजे **रामकृष्ण मिशन, नारायणपुर** के लिये प्रस्थान किया। वहाँ महाराज ने २५ मई तक निवास किया। उन्होंने वहाँ ८ दिन भक्तों को दीक्षा प्रदान की और २३ मई को नव निर्मित बालगृह का उद्घाटन किया। उसके बाद २६ मई, २०१६ को महाराज **रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर** में १० बजे पदार्पण किए। उनके आगमन से भक्तों में प्रसन्नता की लहर दौड़ गई। आश्रम में आनन्द का वातावरण बन गया। २८ और २९ मई को पूज्य महाराजजी ने मुक्तिपिपासू भक्तों को दीक्षा प्रदान की। चार दिनों तक महाराजजी के प्राइवेट सेक्रेटरी स्वामी आत्मज्ञानन्द जी महाराज ने मंदिर में अपने सुरीले भजनों से सभी भक्तों को बहुत आनन्द दिया। ३० मई को महाराजजी ने रायपुर से शाम की फ्लाईट से पुन: चेन्नई हेतु प्रस्थान किया।

अमरंकटक में स्वामी आत्मानन्द स्मृति सत्संग भवन का लोकार्पण समारोह सम्पन्न हुआ

२१ मई, २०१६ बुद्ध पूर्णिमा के अवसर श्रीरामकृष्ण कुटीर, अमरकंटक के ३७वें स्थापना दिवस पर'स्वामी आत्मानन्द स्मृति सत्संग भवन' का लोकार्पण रामकृष्ण अद्वैत आश्रम, वाराणसी के वरिष्ठ संन्यासी स्वामी निखिलात्मानन्द जी महाराज द्वारा किया गया। ब्रह्मलीन स्वामी आत्मानन्द जी महाराज की इच्छा थी कि नर्मदा-तट पर पधारने वाले साधु-श्रद्धालुओं के लिये एक सत्संग भवन का निर्माण हो। उनका वह संकल्प साकार हुआ। लोकार्पण समारोह के विशिष्ट अतिथि थे रामकृष्ण मठ-मिशन के न्यासी और रामकृष्ण मठ, इलाहाबाद के अध्यक्ष स्वामी सर्वभूतानन्द जी महाराज, श्रीरामकृष्ण मिशन, ग्वालियर के स्वामी राघवेन्द्रानन्द जी महाराज और विवेकानन्द विद्यापीठ के सचिव डॉ. ओमप्रकाश वर्मा।

भक्त शिविर का आयोजन हुआ

सत्संग भवन लोकार्पण के बाद २२, २३ मई को दो दिवसीय भक्त शिविर का आयोजन भी हुआ, जिसमें देश के विभिन्न राज्यों से लगभग ६० भक्त भाग लेकर उपरोक्त वक्ताओं के आध्यात्मिक विचारों और अमरंकटक के प्राकृतिक आध्यात्मिक वातावरण से अनुप्राणित हुए।

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर द्वारा राहत कार्य किया गया

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर ने १३ अप्रैल, २०१६ से लेकर २४ मई, २०१६ तक रायपुर जिले के सलोनी, सेजबहार, धुसेरा, सिंगारभाटा, देवारभाटा, वीर शिवाजी नगर, वाटिका नगर, कुकुरबेड़ा और दुर्ग जिले के साँकरा, मोतीपुर, भोथली, मगरघटा, अमलेश्वर, अमलीडीह के गाँवों में राहत-कार्य किया। उसमें १४ गाँवों के ८६७ परिवारों के १०३९ लोगों में शर्ट-पैंट और शर्ट-टीशर्ट बाँटे गये।

अन्तर्राष्ट्रीय योग दिवस मनाया गया

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द मेमोरियल, वड़ोदरा, वड़ोदरा जिला प्रशासन और नगरपालिका वड़ोदरा के संयुक्त तत्त्वावधान में 'अन्तर्राष्ट्रीय योग दिवस' सर शय्याजीराव नगरगृह बड़ोदरा में मनाया गया। जिसमें वड़ोदरा के महापौर ने अपने उद्घाटन भाषण में कहा कि योग भारत के द्वारा दिया गया विश्व को अनुपम उपहार है। श्री अनन्त जोशी, श्री दुष्यन्त मोदी, जिलाधिकारी और नगरनिगम आयुक्त सहित काफी लोग उपस्थित थे।

राष्ट्रीय युवा शिविर आयोजित हुआ

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द मेमोरियल, वड़ोदरा में ३ से ५ जुलाई तक राष्ट्रीय युवा शिविर का आयोजन किया गया, जिसमें १५ राज्यों के ६०० युवकों ने भाग लिया। शिविर का उद्घाटन महाराजा शैय्याजीराव विश्वविद्यालय की कुलाधिपति श्रीमती शुभांगिनी देवी गायकवाड़ के द्वारा १० बजे प्रो. सी. सी. मेहता आडोटोरियम, एम.एस.यू. कैम्पस वड़ोदरा में किया गया। भारत के प्रधानमन्त्री श्री नरेन्द्र मोदी जी ने अपना प्रेरक संदेश भेजा। शिविर के प्रथम सत्र की अध्यक्षता गुजरात के शिक्षामन्त्री श्री भूपेन्द्र सिंह चूड़ासमा ने की। युवा विभाग के सचिव श्री राजीव गुप्ता ने विदाई सत्र की अध्यक्षता की। मुख्य वक्ता थे – स्वामी विश्वात्मानन्द जी महाराज, स्वामी सर्वलोकानन्द जी महाराज, स्वामी सर्वस्थानन्द जी महाराज, डॉ. ओमप्रकाश वर्मा आदि। स्वामी निखिलेश्वरानन्द जी ने समस्त आगत अतिथियों और सहयोगियों का हार्दिक धन्यवाद ज्ञापन किया। OOO